द्वितीय अध्याय

''रामदश मिश्र के काव्य का परिचयात्मक विवेचन''

द्‌वितीयअध्याय

''रामदरश मिश्र के काव्य का परिचयात्मक विवेचन''

प्रास्ताविक :

'रामदरश मिश्र के काव्य का परिचयात्मक विवेचन' इस द्‌वितीय अध्याय के अंतर्गत शोध विषय संबंधी दोनों काव्य-संग्रहों का परिचयात्मक विवेचन किया है। प्रथम काव्य-संग्रह 'रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ' (सन् 1990) यह रामदरश मिश्र जी के ही काव्य-संग्रहों में से चुनिंदा कविताओं का संकलन डॉ. रघुवीर चौधरी जी ने किया है। डॉ. रघुवीर चौधरी मिश्र जी के परम शिष्यों में से एक है। द्‌वितीय काव्य-संग्रह 'बाजार को निकले हैं लोग' (सन् 1962) यह डॉ. रामदरश मिश्र जी का गज़ल-संग्रह है। इन दोनों काव्य-संग्रहों की प्रत्येक कविता तथा गज़ल का परिचय संक्षिप्त रूप में दिया है। इसका विवेचन इस प्रकार किया है -

2.1 रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ - सं. रघुवीर चौधरी :

इस काव्य-संग्रह का प्रथम संस्करण सन् 1990 में पार्श्व प्रकाशन, अहमदाबाद द्‌वारा प्रकाशित हुआ है तथा द्‌वितीय संस्करण सन् 2002 में इसी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। इसका संपादन डॉ. रघुवीर चौधरी ने किया है जो फिलहाल गुजरात के निवासी है। इसमें रामदरश मिश्र के बारह काव्य-संग्रहों में से महत्त्वपूर्ण चुनिंदा कविताएँ संकलित हैं। इसमें से कई गीत, गज़ल तथा कविताएँ हैं। इसमें कुल 71 कविताओं को संकलित किया है। मिश्र जी का सन् 1962 में अहमदाबाद से 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ था तब रघुवीर चौधरी ने छात्र जीवन में उनकी कुछ कविताएँ मिश्र जी के मुँह से सुनी थी। मिश्र जी की कविताओं ने उन्हें बहुत प्रभावित किया। गुजरात में अध्यापक के रूप में ज्यादा दिन रहने के कारण उनके पाठक तथा निकटवर्तियों को बार-बार लगता था कि रामदरश जी की काव्य-रचनाओं का प्रतिनिधि काव्य-संकलन तैयार किया जाए। रघुवीर जी को महावीर सिंह चौहान, नवनीत गोस्वामी तथा विनित आदि मित्रों ने प्रोत्साहित किया तथा इस कमी को डॉ. रघुवीर चौधरी जी ने सन् 1990 में दूर किया।

इस काव्य-संकलन की कविताएँ एक अलग दस्तावेजी महत्त्व रखती हैं। इसमें देश की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि स्थितियों का यथार्थ चित्रण प्राप्त होता है। इसमें मिश्र जी ने भोगे यथार्थ को वाणी दी है। मिश्र जी प्रगतिशील

रचनाकार हैं। उनके काव्य में स्वातंत्र्योत्तर भारत की विविध समस्याओं का चित्रण पाया जाता है। मिश्र जी की कविताओं का परिचयात्मक विवेचन इस प्रकार है -

2.1.1 **'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' :-**

'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' इस संग्रह की यह शीर्षक कविता है। इसके माध्यम से उनका प्रगतिशील रूप मुखरित होता है। रामदरश मिश्र जी ने अपने निजी अनुभवों को पाठकों के सामने रखने का प्रयास किया है। 'बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ' का मतलब है जो चिट्ठियाँ 'पेड़' नहीं हुई है (Not Paid)। यह चिट्ठियाँ पेड़ (Paid) न होने का कारण वह बेनाम हैं। इस पर किसी एक विशिष्ट व्यक्ति का नाम नहीं लिखा है। इसी कारण इसका कोई वारिस नहीं है। वह चिट्ठी किसी के भी नाम की हो सकती है। जो भी यह चिट्ठी पढ़ेगा वह तड़प उठेगा। उसे लगेगा कि किसी ने ये चिट्ठी मेरे ही नाम लिखी थी। मिश्र जी कहते हैं-

"ओह !
बहुत दिन पहले किसी ने
ये चिट्ठियाँ
शायद मेरे ही नाम लिखी थीं।"[1]

इस कविता के माध्यम से कवि कहना चाहता है कि उनका खुद का साहित्य एक बैरंग बेनाम चिट्ठियों जैसा है, जो किसी एक को केन्द्र में रखकर नहीं लिखा है। उसमें आम जनता का दुख-दर्द है। वह आम आदमी पर केंद्रित है।

2.1.2 **'रात और सुबह' :-**

'रात और सुबह' यह इस संग्रह की बहुत छोटी कविता है। यह सिर्फ सात पंक्तियों की कविता है। मिश्र जी की छोटी-छोटी कविताओं में बहुत बड़ा अर्थ समाया है। इसमें मोहभंग और व्यसनाधीनता की समस्या का चित्रण किया है। स्वतंत्रता के बाद लोगों के मन में बहुत बड़ी अपेक्षाएँ थीं, ज्यों कभी पूरी तरह से सफल नहीं हुई। इस पर कवि कहता है -

"बिखरे हैं -
उसके टूटे सपनें"[2]

प्रस्तुत पंक्तियाँ टूटते सपनों की ओर संकेत करती हैं। व्यसनाधीनता ने शहर का वातावरण गंदा कर दिया है। अंग्रेजी सभ्यता के बीज आज भी हममें हैं जो हमारी

संस्कृति का ऱ्हास कर कुसंस्कृति की ओर ले जा रहे हैं। इस कविता में कवि ने भविष्य के प्रति चिंता व्यक्त की है।

2.1.3 **'सहयात्री' :-**

'सहयात्री' इस कविता में मध्यवर्गीय समाज का चित्रण परिलक्षित होता है। इस कविता में दूसरे दर्जे के डिब्बे में बैठे अलग-अलग तीन यात्रियों का वर्णन है। तीनों भी एक ही दर्जे के डिब्बे में यात्रा करते हैं। यह प्रतीकात्मक कविता है। रेल जीवनयात्रा का प्रतीक है। जिसमें अलग क्लास के डिब्बे हैं। 'फर्स्ट क्लास' यह 'उच्च वर्ग' का प्रतीक है तो 'सेकंड क्लास' 'मध्यम वर्ग' का , जो दूसरे दर्जे का सफर कर रहे हैं। मिश्र जी अपनी कविता में कहते हैं -

> ''तीनों यात्री
> तानों के हाथों में
> पुस्तकें खुली हैं
> जिनके शब्द तो एक हैं
> मगर अर्थ अलग-अलग''[3]

इस कविता के माध्यम से बहुत बड़ा सत्य खोजने का प्रयास मिश्र जी ने किया है। सभी मध्यवर्गीयों की समस्याएँ तो एक जैसी हैं लेकिन वह अलग-अलग रूप में उनका पीछा कर रही हैं। जिसके कारण उनमें एक तरह की खामोशी छायी हुई है।

2.1.4 **निशान :-**

'निशान' मिश्र जी की छोटी कविता है। इसमें कवि का स्वगत संवाद है। स्वतंत्रता के बाद देश का विकास एकतर्फा हुआ। अमीर-अमीर ही बनते गये तो गरीब-गरीब ही रहें। देश की हालत ऐसी हुई कि आम आदमी को रहने के लिए मकान और खाने को रोटी नसीब नहीं हुई। तो दूसरी ओर बड़ी-बड़ी इमारतें तथा अनाज से गोदाम भरे पड़े हैं। देश की ऐसी हालत हुई कि ''जिसके पास दाँत नहीं उनके पास चने हैं तो जिसके पास दाँत हैं उनके पास चने नहीं हैं।'' 'निशान' यह गरीबी का प्रतीक है। मिश्र जी कहते हैं -

> ''हाँ, यह मकान बढ़कर
> तिमंजिला - चौमंजिला हो गया
> इसकी सीमेंट सूखकर कड़ी हो गयी
> लेकिन उस दिन

तुमने जो मजाक-मजाक में
गीली सीमेंट पर
मुलायम पाँव रख दिया था
उसका निशान ज्यों-का-त्यों है।''[4]

2.1.5 **'बन्द कर लो द्वार' :-**

डॉ. रामदरश मिश्र जी को उच्च शिक्षा तथा नौकरी के दिनों में बहुत सारे संकटों का सामना करना पड़ा है। फिर भी उनकी गति कम नहीं हुई। वे निरंतर संकटों से जूझते रहें। बुरे दिनों में भी वे किसी लांछनों में नहीं फसे। स्वयं को केंद्र में रखकर लिखी कविता में उनके प्रति हुए अन्याय का चित्रण किया है। वर्तमान समाज में कोई किसी की फिक्र नहीं करता। ज्यों-त्यों अपने स्वार्थ में लिप्त हैं। इसकी ओर संकेत करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

''मेरे दर्द के झोंके हिमानी ये
किसी को क्यों कँपा जायें?
बन्द कर लो द्वार
कोई आ न जाये।''[5]

प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि का स्वाभिमानी व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है।

2.1.6 **सागर और मैं :-**

'सागर और मैं' प्रतीकात्मक कविता है। इस कविता के माध्यम से कवि ने महान संदेश देने का प्रयास किया है। इस कविता में सागर जीवनधारा का प्रतीक है। जीवन में जितना सुख है उससे ज्यादा दुख है। सुख के बाद दुख यह सृष्टि का नियम है लेकिन मनुष्य सदैव दुख से भागता रहता है। वह दुख का डँटकर सामना नहीं करता। इसी कारण वह अपनी मंजिल तक नहीं पहुँच सकता। उन्हें सागर के माध्यम से उन्होंने बहुत कटु शब्दों में समझाया है -

''रुको ओ मनुष्य !
सागर चिल्लाया -
लेते जाओ अपने सपने
मेरे दामन पर जो छोड़ गये,

साहस हो तो इनको पालो, जूझो तड़पो
मुझ-सा ही
जारज बच्चे-सा क्यों फेंक रहे
औरों की छाती पर?''[6]

2.1.7 'होने, न होने के बीच' :-

'होने, न होने के बीच' कविता में मिश्र जी ने झूठी शान तथा उपरी दिखावे की प्रवृत्ति पर चोट की है। मिश्र जी उन रचनाकारों में हैं जो यथार्थ का साथ कभी नहीं छोड़ते। किसी साहित्यिक दल में शामिल होने से उनके यथार्थ को बाधा पहुँच सकती है। इसलिए वे किसी साहित्यिक दल में शामिल नहीं हुए। ये दल किसी न किसी राजनीति से जुड़े होते हैं। इसी कारण साहित्य में पूर्ण रूप से यथार्थ चित्रण करना संभव नहीं होता क्योंकि उस साहित्य पर उस दल का दबाव रहता है। किसी दल में शामिल होने से उस आदमी को विविध सम्मानों से सम्मानित किया जाता है मगर उन्हें सम्मानित करनेवाली संस्था की सदैव उन्हें चापलूसी करनी पड़ती है। यह सब दिखावे की प्रवृत्ति है। इस तरह के रचनाकारों में से मिश्र जी नहीं है। इसलिए वे कहते हैं -

''मैं हूँ -
वह नहीं, जो हूँ
वह, जो मुझे पहना दिया गया है
कीलें ठोंक ठोंक कर
और यह पहनाया गया मैं भी
किसी दूसरे के शरीर का है
कहीं से ढीला
कहीं अंगों को कसता हुआ''[7]

2.1.8 'केन्द्र और परिधि उर्फ बड़ी छोटी मछलियाँ' :-

यह प्रतीकात्मक कविता है। बड़ी मछलियाँ बड़े-बड़े राजनीतिक पार्टियों का, तो छोटी मछलियाँ छोटे-छोटे दलों का प्रतीक है। सन् 1980 के बाद भारतीय राजनीति में परिवर्तन आया। देश में अनेक पार्टियों तथा दलों का निर्माण हुआ। ऐसी कोई पार्टी नहीं रही कि जो अपना बहुमत केन्द्र में सिद्ध कर सके, उसे किसी-न-किसी दल का सहारा लेना ही पड़ता है। इसलिए सत्ता हासिल करने के लिए ये राजनीतिक दल के प्रमुख

रण में नहीं लड़ते तो दिमाग़ लड़ाते हैं। चाहे उन्हें किसी भी नीचली हद तक पहुँचना पड़े। ये बातें सामान्य लोगों की समझ में नहीं आती। एक बार सत्ता हासिल करने पर उनका संबंध जनता से टूट जाता है। केंद्रिय राजनीति की ओर प्रहार करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

''केंद्र में सतह के नीचे
बड़ी-बड़ी मछलियाँ आपस में लड़ती रहती है
छोटी मछलियों के लिए ...''[8]

2.1.9 **'लाशों के बीच : जीवित होने की पीड़ा' :-**

इस कविता में भ्रष्टाचारी व्यवस्था पर चोट की है। भ्रष्टाचार की बीमारी ने सामान्य जनता का जीना हराम कर दिया है। कोई भी काम रिश्वत दिये बिना नहीं होता है। आज मानवता समाप्त होती जा रही है। पैसा ही आदमी के लिए सर्वस्व बन गया है। भ्रष्टाचारी अधिकारी सभी ओर चलती फिरती लाशों की तरह फैल गये हैं। आज रिश्वत दिये बिना किसी का काम जल्दी नहीं होता। आज आम जनता भी इस आदत से जुड़ गई है। इसकी ओर संकेत करते हुए कवि कहते हैं कि -

''मुरदों के हाथ फैले हैं,
जिनमें चुपचाप नोट ठूँस कर
अभ्यस्त लोग आगे सरक जाते हैं।''[9]

अतः स्पष्ट है कि कवि के मन में भ्रष्टाचारी लोगों के विरोध में इतनी चीढ़ निर्माण हुई है कि उन्हें वे मुर्दों की उपमा देते हैं।

2.1.10 **'आमने सामने मकान' :-**

'आमने सामने मकान' यह छोटी-सी कविता आज समाज में आये बिखराव को स्पष्ट करती है। आमने सामने मकान में रहकर भी लोग एक-दूसरे से अजनबी बने रहते हैं। इसे स्पष्ट करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

''आमने-सामने मकान
बीच में एक सड़क है।
मकान रोज देखते हैं - एक-दूसरे को
किन्तु सड़क पार नहीं करते।''[10]

2.1.11 **'गलियाँ और सड़कें' :-**

'गलियाँ और सड़कें' यह प्रतीकात्मक कविता है। सड़कें उच्च-वर्ग का

तो गलियाँ निम्न-वर्ग का प्रतीक है। निम्न वर्गों के लिए सदैव अभावग्रस्त जीवन जीना पड़ता है। इस वर्ग को उच्च्व-वर्ग सदैव पीसता रहता है। इसी वजह से उनके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आता। इसकी चिंता व्यक्त करते हुए कवि रामदरश मिश्र जी कहते हैं -

"कब तक ये गलियाँ
अलग-अलग बँटी हुई
ऐसी ही सहती रहेंगी होने की पीड़ा।"[11]

2.1.12 'अजनबी ठण्डी हवाएँ' :-

'अजनबी ठण्डी हवाएँ' संदेशात्मक कविता है। इसमें कवि ने सदैव सजग तथा प्रयत्नरत रहने का संदेश दिया है। आज तुरंत बदलाव का युग है। जो समय के साथ चलेगा वही अपनी मंजिल तक पहुँचेगा। समय निकल जाने के बाद पश्चात्ताप करने से कोई फायदा नहीं है। इसलिए मिश्र जी कहते हैं -

"खिड़कियाँ खोल दो,
हटा दो परदे,
माना कि बाहर गरज रही हैं अजनबी ठण्डी हवाएँ
जो चलते-चलते तुम्हारी खिड़कियाँ पीट जाती है।"[12]

2.1.13 'रचना' :-

'रचना' कविता में कवि ने सृष्टि की नियति के बारे में बतलाया है। प्राचीन काल से ही नाश और निर्माण का क्रम चलता आया है। सृष्टि ने कितनी बार मनुष्य जीवन उज़ाड़ने के लिए आतंक मचाया फिर भी आदमी उसके सामने नहीं झुका। उजड़े जीवन को वह हिम्मत से फिर निर्माण में जुट जाता है। सृष्टि का यह नियम मिश्र जी बच्चों के माध्यम से बताते हैं। बच्चे तिनके बटोरकर सुंदर रचना निर्माण करते हैं। रात के बारिश में वह रचना बह जाती है। इससे बच्चे नाराज नहीं होते। सुबह फिर वह तिनके बटोरने लगते हैं और रचना बनाना शुरू करते हैं। यहाँ जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टि और दृढ आस्था प्रकट होती है।

2.1.14 'दिशाएँ बन्द हैं।' :-

मिश्र जी का बचपन देहात में बीता है। इसी कारण उनका प्रकृति के प्रति सहज लगाव रहा है। आज वे दिल्ली में रहते हैं। आज दिल्ली जैसा महानगरीय जीवन अनेक समस्याओं से घीरा है। औद्योगिक प्रगति के कारण सौ आदमी का काम अकेला

यंत्र करने लगा है। इसी कारण बेरोजगारी की समस्या बढ़ गयी। काम की तलाश में आदमी चारों ओर भटकने लगा। जिस प्रकार मछुआरा मछलियाँ न मिलने के कारण निराश होकर घर वापस लौटता है वही हालत आदमी की हो गयी है। इसकी ओर संकेत करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"जाल कन्धों पर धरे दिन सुबह आता है
हर शाम खाली लौट जाता है।"[13]

2.1.15 **'ग्रीष्म दोपहरी : छह कविताएँ' :-**

यह मिश्र जी की व्यंग्यात्मक कविता है। इसके माध्यम से उन्होंने महानगरीय जीवन की समस्याओं का चित्रण किया है। महानगरीय जीवन अनेक समस्याओं से घीरा है। ग्रीष्म में पतझड़ होती है मगर उसमें नवनिर्माण का जोश होता है। प्रकृति में ग्रीष्म के बाद वसंत की बहार आती है लेकिन आज महानगरीय जीवन ज्यादा ही पतन की ओर जा रहा है। इस व्यवस्था ने यह जीवन ज्यादा ही खतरनाक बना दिया है। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए कवि कहते हैं -

"गदहे कुछ सूखे मैदान में
चरते हैं, गाते हैं, झाड़ते दुलतियाँ
× × ×
रेत में खेल रहीं
हरी हरी दूबें।"[14]

2.1.16 **'जंगल' :-**

कवि ने 'जंगल' कविता के माध्यम से शहरी कृत्रिम जिंदगी की ओर संकेत किया है। देहातों में तालाब में दिखनेवाली मछलियाँ आज शहरों में शोकेस की जल में तैरती हुई दिखाई देती हैं। शहरों में आज जहाँ भी देखो मकान ही मकान नजर आते हैं। शहरी जीवन इतना व्यस्त हो गया है कि किसी के पास किसी के लिए समय नहीं है। शहर अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। जब कवि शहर में जंगल की तलाश में भटकता है तो उन्हें कहीं भी जंगल दिखाई नहीं देता।

2.1.17 **'कन्धे पर सूरज' :-**

'कन्धे पर सूरज' नामक मिश्र जी का अलग काव्य-संग्रह भी है। प्रस्तुत कविता के माध्यम से कवि का प्रगतिशील दृष्टिकोण प्रकट होता है। वे सदैव यथार्थ के

पक्षधर रहे हैं। वे किसी भी साहित्यिक दल से संबंधित न रहने के कारण साहित्यिक क्षेत्र में उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है। उन्हें कभी-कभी लगता था कि इस यथार्थ का साथ छोड़ दूँ। मगर यथार्थ के बीज उनके खून में ही समाये होने के कारण उनका साथ कभी नहीं छोड़ सकते थे। इसलिए वे कहते हैं कि -

''कितनी बार चाहा कि कंधे पर से पटक दूँ इस सूरज को
लेकिन हर बार लगा कि यह सूरज उपर से बैठा नहीं है
कंधे पर उगा है मेरे ही भीतर से''[15]

2.1.18 **'दवा की तलाश' :-**

'दवा की तलाश' कविता में कवि का मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट हुआ है। नौकरी के कारण मिश्र जी को उनकी जन्मभूमि छोड़कर कई शहरों में घूमना पड़ा। वही हालत अन्य देहाती लोगों की भी है। देहाती लोग शहरों में नौकरी के लिए आते हैं और वहीं स्थायी होते हैं। मातृभूमि उनके इंतजार में रहती हैं। मगर ये जीवन की दवा है जिसे खोजने एक बार आदमी घर से निकलता है तो वापस नहीं आता। इस प्रकार प्रस्तुत कविता में कवि का मातृभूमि के प्रति प्रेम प्रकट होता है।

2.1.19 **'साक्षात्कार' :-**

'साक्षात्कार' इस संग्रह की 'लंबी कविता' है। इस लंबी कविता के माध्यम से कवि ने आम आदमी के धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक शोषण का चित्रण किया है। यह प्रजातंत्र अपात्र लोगों के हाथ में होने के कारण आम आदमियों की पीड़ाएँ दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। 'साक्षात्कार' कविता के बारे में ललित शुक्ल कहते हैं - ''मिश्र जी की 'साक्षात्कार' कविता का रचनाकाल सन् उनहत्तर है। यह समय ऐसा था जब सामाजिक परिवेश में बहुत उथल-पुथल थी और साहित्य परिवेश में आंदोलनों के झोंके चल रहे थें। ऐसी स्थिति में मिश्र जी का दृष्टिकोण सदैव समाजोन्मुख ही रहा।''[16] वे सदैव अपनी कविताओं के माध्यम से अनेक समस्याओं को उठाते रहें हैं। जैसे की उन्होंने कविता के माध्यम से लोगों के सामने साक्षात्कार ही किया है।

2.1.20 **'गठरी' :-**

'गठरी' इस संग्रह की लंबी कविता है। आज ग्रामीण जीवन अनेक समस्याओं से घीरा है। उन समस्याओं को मिश्र जी ने 'गठरी' नाम से संबोधित किया है। आज आदमी इन समस्याओं की गठरी ढ़ोने के लिए मजबूर है। वह देहात से महानगर में

बसता तो है फिर भी उनकी गठरी उनका पीछा नहीं छोड़ती। जब हम पारतंत्र्य में थे तो यह समस्याएँ थीं ही। उससे भी ज्यादा आज वह जटिल हुई है। इससे कोई भी मनुष्य अछूता नहीं रहा। इसकी ओर संकेत करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"होश सँभालते ही मुझे लगा कि
मेरे सिर पर एक गठरी है -
खाद और गोबर की गठरी,
फिर किताबों की एक गठरी,
फिर सीधा-पिसान की एक फटी गठरी
और सब के बीच भूख और भय की गठरी।"[17]

2.1.21 **'लौट आया हूँ मेरे देश'** :-

'लौट आया हूँ मेरे देश' यह इस संग्रह की लंबी कविता है। भारत का सही रूप देहातों में मिलता है। कवि का भी इस कविता के माध्यम से अपने देश की धरती के प्रति गहरा लगाव प्रतित होता है। उनका मन महानगर से ऊब जाने के कारण सहज ही देहात से जुड़ जाता है। सही समस्याओं की जड़े देहात में है। फिर भी वहाँ शहर की तुलना में अपनापन, लगाव ज्यादा रहता है। वहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य मन विभोर कर देता है। उन्हें अपने मातृभूमि के प्रति गर्व है। वे अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए कहते हैं -

"ये हाँफते हुए गड्ढे . . .
ये काइयों भरे ताल ...
ये टूटे हुए कुएँ ...
ये ही सब मेरे हैं
लेकिन दूर के सागर पर मैं कब तक भटकता रहता।"[18]

2.1.22 **'वापसी'** :-

'वापसी' मिश्र जी की बहुत छोटी कविता है। इस कविता के माध्यम से लालच के शिकार क्रांतिकारी लोगों के व्यवहार पर चोट की है। ये लोग भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज उठाते हैं। लोगों का संघटन बनाकर भ्रष्टाचार का समूल निवारण करने की योजनाएँ बनाते हैं। बड़ी-बड़ी सभाओं में भाषण देते हैं। लोगों की भावनाओं को प्रक्षोभित करने का प्रयास भी करते हैं। जब इस बात का पता अमीर भ्रष्टाचारी लोगों को लगता है तो वे इन लोगों को पैसे का लालच दिखाकर उनका मुँह बंद कर लेते हैं। जिस

प्रकार कुत्ते को रोटी नहीं मिलती तब तक ही कुत्ता भौंकता रहता है और जब उसे रोटी मिलती है तो वह चुपचाप कोने में पड़ा रहता है। आज वही हालत आज के क्रांतिकारियों की हुई है। समाज में मालिक के लिए लड़नेवाले कुत्ते थोड़े ही हैं। आज समाज में भ्रष्टाचार तथा आतंकवाद फैलने के कारण हमारी प्रभावी क्रांतिकारी संघटनाएँ नहीं रही। ऐसे क्रांतिकारी उन लोगों के राष्ट्रप्रेम को चित्रित करते हुए मिश्र जी कहते हैं-

"लौट आये हैं वे लोग जो कल गये थे
और अंधेरे-बंद कमरे में गुम होकर
अपने-अपने हिस्से का बँटवारा कर रहे हैं।"[19]

2.1.23 **'वसन्त' :-**

'वसन्त' कविता दुहरे अर्थ को चित्रित करती है। एक अर्थ में इस कविता में मनुष्य जाति का प्रकृति के प्रति निष्ठुर व्यवहार को चित्रित किया है। आज पर्यावरण की समस्या दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। जंगल नष्ट होने लगे हैं। तो दूसरे अर्थ में इस कविता की 'कोयल' स्वयं कवि है जो किसी वाद के लिए नहीं लिखते तो वे आम जनता के लिए लिखते हैं। दल के लोगों द्वारा प्रलोभन दिखाया तो भी उसे वे नहीं मानते। वे अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाया रखना चाहते हैं।

2.1.24 **'बाहर तो वसन्त आ गया है' :-**

'बाहर तो वसन्त आ गया है' यह संदेशपरक कविता है। इसमें कवि ने वर्तमान स्थिति से सजग रहने का संदेश दिया है। जो वर्तमान को भूल गया वह भविष्य में कुछ नहीं कर सकता। कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है। वसन्त की बहार लूटने के लिए पतझड़ के दिन काटने पड़ते हैं। इन सारी बातों से मिश्र जी परिचित हैं। पर हम इस परिस्थिति से उन्मुख रहे तो इसका मजा नहीं चखा पाते। इसे स्पष्ट करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"तुम कब तक प्रतिक्षा करते रहोगे वसंत की
बन्द कमरों में
तुम्हें पता नहीं बाहर तो वसन्त आ चुका है।"[20]

2.1.25 **'नदी बहती है' :-**

'नदी बहती है' यह सिर्फ चार पंक्तियों की कविता है। मिश्र जी की छोटी-छोटी कविताओं में बहुत बड़ा अर्थ समाया है। इस कविता में कवि ने राजनीतिक भ्रष्टाचार का चित्रण किया है। गरीब जनता के लिए सरकार योजनाएँ बनाती है मगर वह जनता तक

नहीं पहुँचती। इसे नेता लोग बीच में ही हड़प लेते हैं। इसका सटीक रूप से चित्रण मिश्र जी की कविता में मिलता है। वे कहते हैं -

> ''हमेशा आकाश से झरती है एक नदी
> और हमेशा ऊपर ही ऊपर कोई पी लेता है,
> धरती प्यासी की प्यासी रहती है
> और कहने को आकाश से नदी बहती है।''[21]

2.1.26 **'कलम' :-**

'कलम' कविता मिश्र जी की प्रगतिशीलता की गवाही देती है। उनका संपूर्ण साहित्य अनुभव जगत का संसार है। इसे यथार्थता का आधार है। उनमें कृत्रिमता न के बराबर है। वे प्रगतिशील रचनाकार होने के कारण परिस्थिति के साथ समझौता नहीं करते। जो लिखते हैं वह सही लिखते हैं। वे कविता के माध्यम से कहते हैं कि उनके हाथ में सदैव सोने की नहीं तो सरकंडे की कलम होती है जो सदैव सही लिखती है।

2.1.27 **'पता' :-**

'पता' यह प्रतीकात्मक कविता है। इस कविता में 'काँटों का जंगल' दुर्जन व्यक्ति का प्रतीक है, तो 'लता' सज्जन व्यक्ति का प्रतीक है। सज्जनों को बार-बार दुर्जनों की निंदा सहनी पड़ती है। वह सदैव दुर्जनों से घीरा होता है। उससे ऊपर उठने की कोशिश सदैव बनी रहती है। बुराइयों के बीच किस प्रकार अच्छाई घीरी होती है इसका चित्रण करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

> ''चारों ओर काँटों का जंगल
> और भीतर कहीं
> एक डरी हुई लता है।
> जाओ, चले जाओ
> यही उसके घर का पता है।''[22]

2.1.28 **'वह' :-**

'वह' कविता में 'वह' शब्द-प्रयोग कवि ने सामान्य लोगों के लिए किया है। स्वातंत्र्योत्तर काल में सामान्य जनता का जीवन ऊँचा उठाने का प्रयास किया मगर इसमें सरकार असफल रही है। थोड़े-बहुत बदलाव के साथ परिस्थितियाँ वैसी ही रही। इसका चित्रण करते हुए मिश्र जी कहते हैं कि -

15511 BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR 15511

"बजबजाती हवाओं के बीच
कच्ची दीवार की टूटी छाया।
उसके तले
उसी तरह बैठा हुआ वह ...
उसके साथ एक कुत्ता, एक बकरी
और उसका साया।"[23]

2.1.29 **'माँ' :-**

'माँ' कविता में माँ का बेटे के प्रति प्यार व्यक्त हुआ है। भारतीय संस्कृति में माता को अनन्य साधारण महत्त्व है। वह स्वयं भूखा रहकर बच्चे को खाना खिलाती है। जब कभी बच्चा दुखी होता तो उसका दुख हलका करने का कार्य करती है। बेटा चाहे कितना भी बड़ा हो जाए वह माँ-बाप के लिए छोटा ही होता है। माँ का इतना प्यार पाकर बच्चे का भी मन भर आता है। वह कहता है -

"माँ जब तक तुम हो
मैं मरूँगा नहीं।"[24]

2.1.30 **'सेमल' :-**

'सेमल' कविता में कवि मिश्र जी पर साहित्यिक जीवन में हुए अन्याय का चित्रण हुआ है। यह सिर्फ कवि का ही दुख नहीं तो जिन-जिन साहित्यकारों पर यह अन्याय हुआ उनकी यह करूण कहानी है। जिसके जीवन काल में उनके साहित्य को दबाया गया वही साहित्य तथा साहित्यकार की मृत्यु के बाद पुरस्कारों से सम्मानित होता है। क्योंकि उनके साहित्य में समय का सत्य था। अन्य फूलों की तुलना में सेमल औषधी है। औषधी होकर भी वह दुर्लक्षित है। वही हालत साहित्यकारों की है।

2.1.31 **'सड़क' :-**

'सड़क' कविता में कवि ने शहरी जीवन की तुलना में ग्रामीण जीवन श्रेष्ठ ठहराने का प्रयास किया है। इसमें कवि और सड़क का वार्तालाप है। भारतीय संस्कृति के बीज देहातों के कारण मौजूद है। इस कविता के बारे में डॉ. फूलबदन यादव कहते हैं - "वास्तव में हमारे देश का स्वरूप गाँवों में है। परंतु लोग इसकी कल्पना शहरों में करते हैं। शहरों के अनुरूप ही देश की व्याख्या की जा रही है। वास्तव में यह शहर लोगों को भ्रम में डाल रहे हैं।"[25] स्वयं कवि को भी देहात का आत्मीय वातावरण आकृष्ट करता है तो शहर

का गंभीर वातावरण बेचैन करता है। वे आज भी अपने गाँव की ओर जाने को लालायित हैं। यह दशा सिर्फ कवि की न होकर गाँव से शहर में बसे हर आदमी की है।

2.1.32 **'मकान' :-**

'मकान' इस छोटीसी कविता के माध्यम से कवि ने मानव की क्रूर प्रवृत्ति का दर्शन किया है। चिड़ियों के माध्यम से आज की महत्त्वपूर्ण समस्या को उजागर किया है। चिड़िया बार-बार तिनके चुनकर घोसला बनाती है लेकिन आदमी अपनी झूठी शानो-शौकत के लिए चिड़ियों का घोंसला उजाड़ देता है। यह घोसला गरीब लोगों के मकान का प्रतीक है। जिस प्रकार चिड़ियों का घोंसला बार-बार उजाड़ दिया जाता है वही हालत फुटपाथ पर रहनेवाले गरीबों के मकान की है।

2.1.33 **'बच्चा' :-**

'बच्चा' कविता में बच्चा एक मासूम, निरपराध मन का प्रतीक है। उसके मासूम मन पर धीरे-धीरे बाहरी परिवेश का प्रभाव पड़ता है। उसी के अनुसार उनका बर्ताव शुरू होता है। तब हम गर्व से कहते हैं कि बच्चा बड़ा हो गया है। कवि कहता है - मगर उस बच्चे को इस दुनिया का अहसास होता है तो इस बड़प्पन का दुख सताता है।

2.1.34 **'चूहे' :-**

'चूहे' इस कविता के माध्यम से समाज की भीतरी शक्ति खत्म करनेवाली दुर्व्यवस्था पर व्यंग्य किया है। ये चूहे आधुनिक युग के हैं। वे गोदाम या तिजोरी नहीं काटते तो केवल किताबें काटते हैं। इसके प्रति सजग करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

> "सावधान !
> चूहे फिर उतर गये हैं सड़क पर,
> जल्दी ही घरों में प्रवेश करेंगे।
> अपनी-अपनी किताबें सँभाल लो
> ये गोदाम या तिजोरी नहीं काटते
> केवल किताबें काटते हैं
> क्योंकि उनमें इनसे बचने
> या मरने के उपाय लिखे होते हैं।"[26]

2.1.35 **'दिन' :-**

'दिन' कविता में कवि ने आज के व्यस्त मानव जीवन का चित्रण किया है।

मानव जीवन इतना व्यस्त हो गया है कि किसी के पास किसी के लिए समय नहीं। शहरों का जीवन तो इतना व्यस्त है कि दिन-रात वहाँ भाग-दौड़ चलती है। मिश्र जी की इस छोटीसी कविता के बारे में कन्हैयालाल नन्द लिखते हैं - ''उनकी इन छोटी कविताओं में एक कौंध है।''[27] यह कौंध इन शब्दों में व्यक्त होती है -

''दिन थरथराकर भीतर से पिघलने लगा
और धीरे-धीरे एक नदी बन गया।''[28]

2.1.36 **'सृष्टि' :-**

'सृष्टि' कविता में प्रकृति चित्रण आया है। मिश्र जी प्रकृति के माध्यम से मानव समाज में शांति लाने का प्रयास करते हैं। इस कविता में समाज में छोटी-छोटी घटनाओं से शांति भंग करने वाले लोगों पर व्यंग्य किया गया है। इसके लिए कवि ने 'आम' के पेड़ का उदाहरण दिया है। आम यह पेड़ नहीं तो आम आदमी का प्रतीक है, जो शांति तथा मानवता फैलाने का कार्य करता है।

2.1.37 **'धूप' :-**

'धूप' कविता में मिश्र जी के प्रारंभिक जीवन के सुहावने दिनों की यादें हैं। जो दिन उन्होंने देहात में 'डुमरी' नामक गाँव में बिताये थे। वे दिन बहुत खुशी के थे। मगर जब से वे शहर में बसे हैं तब से उनका प्रकृति से संबंध कम होता गया। इसका दु:ख उन्हें बार-बार सताता है। वे प्रकृति के साथ वार्तालाप करते हुए कहते हैं -

''कहाँ गयी वह धूप
जो सुबह-सुबह
मेरे खपरैल पर उतरती थी कबूतर की तरह
और दीवार पर धीरे-धीरे सरकती हुई
आँगन में फैल जाती थी।''[29]

2.1.38 **'राजधानी एक्सप्रेस' :-**

'राजधानी एक्सप्रेस' मिश्र जी की महत्त्वपूर्ण कविताओं में से एक है। इस कविता के माध्यम से उच्च - निम्न वर्ग में जो खाई है उन्हें स्पष्ट करने का कवि का प्रयास है। इस कविता में 'राजधानी एक्सप्रेस' यह उच्च वर्ग का प्रतीक है तो 'सामान्य स्टेशन' तथा 'गाडियाँ' आम जनता का प्रतीक है। इस प्रजातंत्र में नेताओं द्वारा सामान्य लोगों का गला घोटा जा रहा है। जिनके ऊपर देश का भार है उन्हीं का शोषण हो रहा है। इन

लोगों का शोषण कर ये लोग आराम से जी रहे हैं। मिश्र जी कहते हैं -

"जनता गाडियाँ रोक दी गई हैं
यहाँ वहाँ
पसीने से लथपथ वे खड़ी-खड़ी बुदबुदाती हैं
साँस रोक कर खड़े हैं तमाम छोटे-छोटे स्टेशन
हाँ, राजधानी एक्सप्रेस जा रही है राजरानी की तरह।"[30]

2.1.39 **'कविता का जन्म' :-**

'कविता का जन्म' कविता में कवि कविता का निर्माण कैसे होता है इसका वर्णन किया है। वर्तमान कविताओं में वास्तविकता कम और कृत्रिमता ज्यादा है। यह कविता बौद्धिक दृष्टि से बोझिल होने के कारण कवि उन्हें 'गर्भिणी युवती' की उपमा देता है, जो अपने ही भार से झुक रही है। अगर किसी भी परिस्थिति का वर्णन करना हो तो उस स्थिति से एकरूप होना बहुत महत्त्वपूर्ण है। यही गुण मिश्र जी में प्रधान रूप से परिलक्षित होता है।

2.1.40 **'चिड़िया' :-**

'चिड़िया' कविता में कवि ने मानव की क्रूरता की ओर संकेत किया है। मनुष्य ने प्रकृति के बीच बहुत बड़ा हस्तक्षेप किया है। आज मनुष्य जाति पर चिड़िया भी शक कर रही है, जिसका घोसला उजाड़ चुका है। घोसले को खोजती-खोजती सूखी डाल पर बैठकर सोचती है कि यह सब काम मनुष्य का ही है।

"चिड़िया उड़ती हुई कहीं से आयी
बहुत देर तक इधर-उधर भटकती हुई
अपना घोंसला खोजती रही
फिर थक कर एक जली हुई डाल पर बैठ गयी
और सोचने लगी -
आज जंगल में कोई आदमी आया था क्या?"[31]

2.1.41 **'जुलूस' :-**

मिश्र जी की 'जुलूस' यह कविता धार्मिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं की ओर संकेत करती है। आज धर्म राजनीति का साधन बन गया है। 'जुलूस' जिनके लिए निकाला है वे निम्न वर्ग के लोग इसमें शामिल नहीं हैं। इस जुलूस में ज्यो शामिल हैं वह

बड़े-उच्चवर्गीय हैं, जो अपने स्वार्थ के लिए जुलूस निकालते हैं। निम्न वर्ग सदैव अपने रोजी-रोटी की तलाश में व्यस्त रहता है। आज की व्यवस्था पर कवि तीखा व्यंग्य प्रस्तुत करता है।

2.1.42 **'औरत' :-**

'औरत' कविता में कवि ने नारी के नि:स्वार्थीपन का चित्रण किया है। वह सदैव घर के सदस्यों की सेवा में रत रहती है। स्वयं कष्ट उठाकर दूसरों को सुख देने का प्रयास करती है। उसकी सहायता के बल पर घर के लोग अपने-अपने क्षेत्र में नाम कमाते हैं। वाहवाही उनकी होती है मगर उस औरत का कोई नाम नहीं लेता जिन्होंने अपना पूरा जीवन दूसरों की सेवा में लगा रखा है। इसलिए मिश्र जी कहते हैं -

''बरतन भांडे की लय पर
जीवन के मन्त्र पढ़ती रही है,
जो खुद को अंधेरे में रख कर
जिन्दगी भर रोशनी की मूर्ति गढ़ती रही।''[32]

2.1.43 **'फरवरी' :-**

'फरवरी' कविता में प्रकृति के साथ मानवी जीवन में आये बदलाव का चित्रण है। फरवरी मास का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि फरवरी सभी महिनों में उत्साह का महिना है। प्रकृति में हर तरफ हरियाली छायी हुई होती है। रंग-बिरंगी तितलियाँ उड़ती हैं। परंतु आज यांत्रिक युग के कारण मानवी जीवन इतना व्यस्त हो गया है कि मनुष्य को प्रकृति सौंदर्य आस्वाद लेने को भी समय नहीं है। इस व्यस्त यांत्रिक जीवन में लोगों को फरवरी भी अन्य महिनों की तरह लग रहा है। वे उसमें फर्क करना भूल गये हैं।

2.1.44 **'सरोवर' :-**

'सरोवर' कविता में मानवी जीवन की कृत्रिमता पर प्रकाश डाला है। कवि कहता है कि जिसप्रकार पंछी मुक्त रूप से प्रकृति में संचार करते हैं उसी प्रकार आदमी सभ्यता की छाँह में लदा होने के कारण वह जीवन में मुक्त संचार नहीं कर सकता। हर जगह उन्हें खोखले आदर्शों का पालन करना पड़ता है। वह अपना असली रूप दिखा नहीं सकता। इसी कृत्रिमता की ओर कवि ने निर्देश किया है।

2.1.45 **'चिट्ठियाँ' :-**

'वैयक्तिकता' नई कविता की प्रमुख विशेषता रही है। आज किसी को किसी के बारे में सरोकार नहीं है। 'चिट्ठियाँ' इस कविता में वैयक्तिक मानवी जीवन का चित्रण मिलता है। इस जीवन को कवि ने 'लेटर बॉक्स' में पड़ी हुई चिट्ठियों की उपमा दी है। कवि कहता है -

''लेटरबक्स में पड़ी हुई चिट्ठियाँ
अनन्त सुख-दु:ख वाली अनन्त चिट्ठियाँ
लेकिन कोई किसी से नहीं बोलती,
सभी अकेले-अकेले
अपनी मंजिल पर पहुँचने का इन्तजार करती हैं।
कैसा है यह एक साथ होना
दूसरे के साथ न हँसना न रोना
क्या हम भी लेटरबक्स की चिट्ठियाँ हो गये हैं?''[33]

2.1.46 **'पेड़' :-**

'पेड़' कविता में कवि को पेड़ एक सामाजिक संस्था की तरह लगता है। इनकी अलग-अलग डालियाँ सामाजिक संस्था के अलग-अलग घटक हैं। इन संस्थाओं का जब तक एक-दूसरे के प्रति विश्वास होता है तब तक समाज में शांति रहती है। जहाँ विश्वास खत्म होता है वहाँ विघटन की प्रक्रिया शुरू होती है। यही भाव इस कविता के माध्यम से प्रतीत होता है। जिस पेड़ के नीचे सभी सुख-शांति से जीते थे वही एक-दूसरे के प्रति अविश्वास प्रकट करने लगे हैं। जिससे विश्वशांति को धोका पहुँच गया है।

2.1.47 **'दस्तक' :-**

'दस्तक' कविता में असुरक्षित महानगरीय जीवन का चित्रण मिलता है। पहले तथा दूसरे महायुद्ध के कारण मानव-जीवन में बदलाव आया। लोगों के मन पर इसका गहरा असर हुआ। वह अपने को असुरक्षित समझने लगा। यह स्थिति देहात की तुलना में नगरों में तो बहुत बिकट हो गयी। आज दस्तक बजने पर किसी अतिथि की नहीं तो गुंडों की याद आती है, जो लोगों को दिन-दहाड़े लूटते हैं। इस प्रकार महानगरीय जीवन में आये बदलाव का चित्रण इस कविता में मिलता है।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY

2.1.48 **'धर्म' :-**

'धर्म' कविता के माध्यम से कवि ने धर्म के नाम पर अशांति फैलानेवाले लोगों के प्रति आक्रोश प्रकट किया है। कवि ने प्रकृति के माध्यम से धर्म की व्याख्या करने का प्रयास किया है। दुनिया में मानवता ही एक धर्म है जिसे मिश्र जी ने हवा, पानी, आग के माध्यम से प्रकट किया है। वे कहते हैं -

> "मैंने सोचा -
> हम भी तो हवा, पानी, आकाश, आग और
> धरती से बने हैं
> लेकिन हमने उन्हें अलग-अलग धर्मों में
> बाँट दिया है
> उन पर अपने-अपने नाम लिखकर
> उनको उन्हीं से काट दिया है।"[34]

2.1.49 **'डर' :-**

'डर' कविता में कवि ने क्रांति की ओर संकेत किया है। जिसे हम अपना प्रतिनिधि बनाकर संसद में भेजते हैं वही नेता सामान्य जनता की ओर से मुँह मोड़ लेता है। जब जनता का आक्रोश हद से आगे बढ़ता है तब वह क्रांति की ओर मुड़ती है और नेता लोग उन्हें शांत करने का प्रयास करते हैं। जनता शांत नहीं होती तब नेता डर से भागने लगता है। सच देखा जाये तो नेता का असली डर उच्च वर्ग न होकर सामान्य जनता ही है।

2.1.50 **'वसंत' :-**

प्रस्तुत काव्य-संग्रह में 'वसंत' नामक शीर्षक की दो कविताएँ हैं। यह दूसरी कविता है। स्वतंत्रता के स्वर्णिम भविष्य के प्रति लोगों के मन में बहुत आशाएँ थीं। उन्हें लगता था कि स्वतंत्रता के बाद हमारा जीवन सुखी होगा। मगर यह आशाएँ सिर्फ आशाएँ ही रहीं। गरीबों के जीवन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। इसका चित्रण इस कविता के माध्यम से प्राप्त होता है।

2.1.51 **'फिर वही लोग' :-**

'फिर वही लोग' इस काव्य-संग्रह की यह सबसे ज्यादा लंबी कविता है। इस कविता के माध्यम से कवि ने कुर्सी के लिए दल-बदलू नेताओं पर व्यंग्य किया है। सन् 1980 के बाद भारतीय राजनीति में तेजी से परिवर्तन आया। देश में अनेक पार्टियों तथा

दलों की स्थापना हुई। देश लूटने का सत्ता एक साधन बन गयी। इसी कारण यह राजनीतिज्ञ कभी इस दल में तो कभी उस दल में शामिल होकर जनता के सामने आते हैं और दो-दो हाथों से जनता को लूटते हैं। इसे चित्रित करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"इन्द्र और चन्द्रमा दोनों
अहल्या को छलने को ब्राह्मण का वेश रचते हैं।
अहल्या - मेरी धरती
इन्द्र और चन्द्रमा
झण्डा और तिजोरी"[35]

2.1.52 **'एक नीम मंजरी' :-**

'एक नीम मंजरी' यह मिश्र जी का सुंदर गीत है। मिश्र जी के लेखन की शुरुआत गीत विधा से हुई है। इस गीत में प्रणय की प्रथम दशा का चित्रण हुआ है। आयु की प्रौढ़तानुसार इसमें भी बदलाव आया है। प्रणय की प्रथम दशा का चित्रण करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"एक नीम-मंजरी
मेरे आँगन झरी
काँप रहे लोहे के द्वार।
आज गगन मेरे घर झुक गया,
भटका-सा मेघ यहाँ रुक गया।
रग-रग में थरथरी
सन्नाटा आज री
रह मुझे नाम ले पुकार।"[36]

2.1.53 **'रात रात भर मोरा पिहँके' :-**

'रात रात भर मोरा पिहँके' यह प्रणय गीत है। जब प्रेमी का किसी से पहली बार प्यार होता है तो वह बेचैन हो जाता है। उन्हें अपने प्रियतमा की बार-बार याद आती है। वह नींद-चैन खो बैठता है। उनकी आँखों के सामने से प्रियतमा का चित्र हटता ही नहीं। प्रेमी को लगता है कि उसकी प्रेमिका उसे बुला रही है। प्रेमी का भाव कवि इन शब्दों में चित्रित करता है -

"रात रात भर मोरा पिहँके बैरिन नींद न आये
बड़े भोर सारस केंकारे नदिया-तीर बुलाये।"[37]

2.1.54 **'आते घिर-घिर' :-**

'आते घिर-घिर' यह मिश्र जी का प्रकृति वर्णनपरक गीत है। इसमें तुफान का वर्णन है। तुफान अस्थिरता का प्रतीक है। तुफान के कारण सब ओर अशांति फैल जाती है। यही स्थिति मानव-जीवन की भी है। जब मानव जीवन अस्थिर होता है तो उनके मन की बेचैनी बढ़ती ही जाती है। इस तुफान को वह शांत नहीं कर सका तो बहुत बड़ी हानी होने की संभावना होती है। इसी स्थिति का चित्रण मिश्र जी इस कविता में करते हैं।

2.1.55 **'फागुनी शाम : एक नीली झील' :-**

'फागुनी शाम : एक नीली झील' यह भी प्रकृति संबंधी कविता है। यहाँ प्रकृति का संबंध मानवी जीवन से जोड़ने का प्रयास किया है। 'फागुन' यह वर्ष के बारह मासों में एक मास है। इस मास में प्रकृति में बदलाव आते हैं। वृक्षों की पतझड़ होती है। इस प्रकार 'फागुन' की तरह आदमी के आखिरी बुढ़ापे के दिन होते हैं। ये दिन भूतकाल की यादों पर काटे जाते हैं। झरनेवाले पत्ते को आनंद होता है क्योंकि उसकी जगह नया पत्ता जन्म लेता है। मानव जीवन भी ऐसा ही है, जो अंतत: परमात्मा में विलीन होता है। इसे चित्रित करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

''फूटती हैं डालियाँ नंगी
कि जल की नीलिमा थर्रा रही है,
झर रही अनगिनत रेखाएँ महकती
थकी वायु नहा रही है,
एक युग है, एक पल
हर पल बरस कर चुक गया है।
एक नीली झील पर आ रुक गया है
दौड़ता-सा हाँफता दिन।''[38]

2.1.56 **'यायावर बादल' :-**

इस कविता में कवि ने बादलों से वार्तालाप किया है। मिश्र जी जैसा कवि किसी गुट से नहीं जुड़ना चाहता। पाठक ही कवि का सर्वस्व है। ज्यो बादलों की तरह उन पर प्यार करता है। कई बार आलोचकों द्वारा मिश्र जी की रचनाओं पर अन्याय हुआ है। इसी कारण वे वाहवाही से दूर रहें, इसकी कवि के मन को ठेंस पहुँच गयी। इसलिए कवि पाठकों को साथ न छोड़ने का आग्रह करता है।

2.1.57 **'विदाभास' :-**

'विदाभास' कविता में कवि ने प्रकृति वर्णन किया है। यह प्रतीकात्मक कविता है। इस कविता में 'वनराई' आम आदमी के जीवन का प्रतीक है तो 'हवा' आम आदमी के जीवन में आतंक फैलानेवालों का प्रतीक है। जीवन में हर रोज वही घटनाएँ घटती हैं जिसमें कोई बदलाव नहीं आता। मिश्र जी कहते हैं कि डायरी लिखता हूँ मगर रोज वही घटनाएँ दुहराती हैं। इसलिए मिश्र जी कहते हैं -

''भीत पर अंकित दिनों के नाम फिर हिलने लगे
डायरी के पृष्ठ कोरे फड़फड़ा खुलने लगे
उभरने दृग में लगीं पथ की नई गहराइयाँ''[39]

2.1.58 **'हम पूरब से आये हैं' :-**

'हम पूरब से आये हैं' इस गीत के माध्यम से कवि ने अपने गाँव का वर्णन किया है। उनका गाँव उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले का कछार अंचल है, जो 'राप्ती' और 'गौर्रा' दोनों नदियों से घीरा है। हर साल बाढ़ के कारण कई लोगों का संसार उजड़ जाता है। मगर देहातों में भी आज परिवर्तन आया है। लोग पुराने व्यवसाय छोड़कर शहरों की ओर मुड़ गये हैं। जो लोग गाँवों में हल चलाते थें वे गाँव की बेगारी छोड़कर शहरों में रिक्शा खिंचने तथा भारी पत्थर ढोने का काम कर रहे हैं। रहने के लिए जगह नहीं तो वे फुटपाथ पर ही सोते हैं। मजबूरन उन्हें यह सब करना पड़ता है क्योंकि घर के लोग भूख से बेहाल है। कवि ने इस गीत के माध्यम से कछार अंचल का हृदय-द्रावक चित्र खींचा है।

2.1.59 **'खो गयी सब यात्राएँ साथ की' :-**

'खो गयी सब यात्राएँ साथ की' कविता में मानवी जीवन में आये बदलाव की ओर संकेत किया है। आज मानवी जीवन में बिखराव की स्थिति पैदा हुई है। संसार में वह अकेला है। हर आदमी अपने-अपने स्वार्थ में लिप्त है। एक-दूसरे के लिए मर मिटने के दिन चले गये। दिये वचन निभाने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने वाले दिन नहीं रहें। आज स्थिति बदल चुकी है। अपने दुख को व्यक्त करते हुए कवि कहता है -

''खो गयीं सब यात्राएँ साथ की
रास्ता ही रास्ता अब रह गया।
सुबह टूटी पड़ी है नि:शब्द हो
रेत पर प्रक्षिप्त सागर-शंख सी,

हाँफती है शाम अपने से कटी
किसी आँधी बीच टूटे पंख-सी
छोड़ सूखे तट नदी-सा दिन कहाँ
किधर अनजाना अकेला बह गया।''[40]

2.1.60 **'गज़ल' :-**

'जहाँ आप पहुँचे' इस गज़ल के माध्यम से मिश्र जी की जीवन-यात्रा का परिचय मिलता है। उन्हें अपने जीवन में कड़ा संघर्ष करना पड़ा है। साहित्यिक जीवन में भी उन पर अन्याय हुआ है। वे प्रगतिशील लेखक होने के कारण उन्होंने यथार्थ का साथ कभी नहीं छोड़ा। चाहे उन्हें कितना भी कष्ट उठाना क्यों न पड़े। वे सदैव संघर्षरत जीवन जीते रहें। उन्होंने अपनी जीत के लिए किसी को जान-बूझकर गिराने की कोशिश नहीं की। वे एक देहात के रहनेवाले, फिर भी नौकरी के कारण उन्हें महानगर में बसना पड़ा है। महानगरीय जीवन का लेखा-जोखा भी इस गज़ल के माध्यम से कवि प्रकट करता है। मिश्र जी की यह यात्रा आज ऊँचे शिखर तक पहुँच गयी है। वे अपनी गज़ल में कहते हैं -

''जहाँ आप पहुँचे छलांगें लगा कर
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे।''[41]

2.1.61 **'दूर ही दूर से बुलाता है' :-**

'दूर ही दूर से बुलाता है' गीत में प्रणय की आरंभिक दशा का चित्रण हुआ है। एक-दूसरे को मिलने की चाह होकर भी आशिक अपने आशिकी से नहीं मिलता। आशिकी भी उसके प्यार में पागल है मगर वह सदैव उनसे कटती रहती है। इस भावना को प्रकट करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

''दूर ही दूर से बुलाता है
कौन है पास नहीं आता है।

उसकी आवाज अजनबी जैसी
फिर भी लगता युगों का नाता है।''[42]

2.1.62 **'गज़ल' :-**

'जख्मों से भरें...' गज़ल के माध्यम से कवि ने वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला है। आज ऊपर से हँसता हुआ आदमी अंदर से दुखी होता है। वर्तमान स्थिति इतनी भयावह हो गयी है कि हर एक आदमी दूसरों को फँसाने का प्रयास करता है। चाहे वह

फँसा सके या न सके। भारतीय परंपरा में आदमी स्वयं चाहे कितना दुखी क्यों न हो मगर वह दूसरों के सुख-दुख की पूछताछ तो जरूर करता है। इसकी ओर संकेत करते हुए कवि कहता है -

> ''जख्मों से भरे लोग रोते हुए मिलते,
> आपस में पूछते हैं कि राजीखुशी तो हैं।''[43]

2.1.63 **'पके धान की धूप' :-**

'पके धान की धूप' यह मिश्र जी का प्रकृति संबंधी गीत है। इस गीत में कवि ने प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण किया है। पके धान की धूप आँगन में झरने पर धरती का सुना-सा आँगन भर आता है। जब यह धूप महुए पर पड़ती है तो जैसे महुए का पीला वन दिखता है। यह धूप चारों ओर ताजगी लाने का प्रयास करती है। धूप छाने पर चारों ओर आनंद फैलता है। इसका चित्रण करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

> ''पके धान की धूप झरी, पतझर आया
> सुना-सा आँगन धरती का भर आया।''[44]

2.1.64 **'बादल चले जा रहे' :-**

'बादल चले जा रहे' कविता के माध्यम से कवि ने आकाश में बादल छाने पर धरती पर फैलनेवाली हलचल का चित्रण किया है। जब आकाश में बादल उठते हैं तो सभी की आशाएँ पल्लवित होती हैं। लोग बादल बरसने की राह देखते हैं मगर बादल के मन में बरसने के लिए उत्साह नहीं है। जिसप्रकार आदमी दिन भर मेले में घूम-घूम कर शाम घर उदास लौट आता है वही हालत बादलों की हो गयी है। पशु-पक्षी, गाँव के लोग, किसान बड़े चाव से बादल की राह देखते हैं मगर वे बिना बरसे ही चले जाते हैं। तब वे बादल से कहते हैं -

> ''फिर कब आओगे परदेसी?
> पूछ रही मन मारे बादल चले जा रहे !
> पीत-कनेट-गंध से कंपित हवा पुकार रही-रुक जाना
> कालिदास की यक्ष-विरह-कल्पना निहार रही-रुक जाना
> नये चाँद के लिए छोड़ आकाश
> व्योम-बनजारे बादल चले जा रहे।''[45]

2.1.65 **'बादल घेर-घेर मत बरस' :-**

'बादल घेर-घेर मत बरस' कविता में कवि ने विरह वर्णन किया है। प्रिय की याद में प्रेयसी का मन उद्विग्न हुआ है। आकाश में उमड़ने वाले बादल उन्हें अधिक बेचैन करते हैं। उनका रोम-रोम काँपने लगता है। प्रिय ही उनका सर्वस्व है। इसलिए वह बादल को बिनती करती हुई कहती है -

"बादल घेर-घेर मत बरस कि मेरे लाज-बसन डूबे।
रह रह काँपे हिया हवा में, खुले खेत में धान
आँखों में परदेसी काँपे, रोम-रोम में बान
याद का बाँध उठा है टूट कि बिरहा के ये छन डूबे।"[46]

2.1.66 **'खाली हूँ मन भरा-भरा-सा' :-**

'खाली हूँ मन भरा-भरा-सा' कविता में कवि ने मनुष्य के आंतरिक घूटन का चित्रण किया है। ऊपर हरा-हरा-सा दिखने वाला जीवन भीतर से सूखा होता है। मक्कार शासन-व्यवस्था के कारण सामान्य जनता का जीना हराम हो गया है। आज एक आदमी की नहीं तो सभी की स्थिति ऐसी ही है। इस कविता में युगीन विषमता पर चोट की है। दुनिया के बारे में कवि रामदरश मिश्र जी लिखते हैं -

"कितना बड़ा मिला जग हमको
लेकिन कितना मरा-मरा-सा"[47]

2.1.67 **'गाढ़े गये दिन बीत' :-**

इस गीत में कवि ने किसान जीवन का चित्रण प्रस्तुत किया है। कवि रामदरश जी का जन्म देहात में होने के कारण उनका प्रकृति के प्रति ज्यादा लगाव रहा है। किसान देश का महत्त्वपूर्ण अंग है। मिश्र जी ने किसान अपने बैलों को हाँकते-हाँकते किस प्रकार गीत गाता है इसका वर्णन किया है। वे कहते हैं -

"गाढ़े गए दिन बीत रे, बैला बाँएँ से औं औं !
माँ का हरा कचनार मन मुरझाया हुआ है
धूआँ चिता का ताल में अभी छाया हुआ है
पर न नई यह रीति रे, बैला बाँएँ से - औं औं !"[48]

2.1.68 **'पता नहीं' :-**

'पता नहीं' कविता में जीवन के बारे में गहरी सोच दिखाई देती है। मिश्र

जी कहते हैं -

"यह भी दिन बीत गया
पता नहीं जीवन का यह घड़ा
एक बूँद भरा या कि एक बूँद रीत गया !"[49]

जीवन के बारे में गहराई से सोचने पर हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि जीवन सुख-दुख का संगम है। इस हर पल का हमने कितना सदुपयोग कितना दुरुपयोग किया इस पर कवि प्रश्नचिह्न लगा देता है।

2.1.69 **'बरसात गयी' :-**

'बरसात गयी' कविता में कवि ने प्रकृति चित्रण के माध्यम से जीवन के विभिन्न रूपों, विद्रुपताओं और असंगतियों का चित्रण किया है। आज गरिबों के लिए बनाई गई योजनाओं को बीच में ही हड़प किया जाता है। जिसके कारण गरीबी बढ़ती ही जा रही है। इसे चित्रित करते हुए मिश्र जी लिखते हैं -

"जलती रही प्यास नित भू पर,
पीता रहा कौन जल उपर?
चहल-पहल से लदी-लदी जो
आयी थी बारात गयी।
मिहनत के सँग गाते-रोते
हम तो रहे नरक में सोते
काला सुख बटोर कर ऊपर
एक सफेद जमात गयी।"[50]

अत: स्पष्ट है कि प्रस्तुत कविता के माध्यम से वर्तमान समाज की हालत स्पष्ट सामने आती है।

2.1.70 **'कोई दर्पण टूटा होगा' :-**

'कोई दर्पण टूटा होगा' कविता के माध्यम से कवि मन की भावप्रवणता तथा आत्माभिव्यक्ति प्रकट होती है। ऊपर से शांत दिखनेवाला आदमी का जीवन अंदर से जलता रहता है। हर एक जीव निरंतर दूसरों के प्यार के लिए तड़पता रहता है। इस कविता में दो प्रेमियों के दिलों में होनेवाली धड़कन का चित्रण परिलक्षित होता है। सुनसान में प्रेमी का दिल महक उठता है, इसलिए कवि कहता है -

"थर्राता है रह-रह कर सुनसान
फिर फूल कहीं फूटा होगा।
उलझे से है अंध:कार के तार
रात की जाली है,
रंध्र-रंध्र में उफन-उफन सो गयी
शान्त उजियाली है,
तड़प रहे हैं आज नींद में प्राण
फिर तार कहीं छूटा होगा।"[51]

2.1.71 **'जलते हैं फूल' :-**

'जलते हैं फूल' इस काव्य-संग्रह की अंतिम कविता है। प्रकृति कवि की रचना के आकर्षण का केंद्र रही है। प्रकृति के माध्यम से वर्तमान सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डालना मिश्र जी के काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है। कोई अच्छी चीज अपने आप नष्ट नहीं होती, तो उसे जान-बूझकर खत्म किया जाता है। इस कविता में फूल अच्छाई का प्रतीक है। इस कविता में 'सेमल का फूल' स्वयं रामदरश मिश्र जी हैं। उनके साथ साहित्यिक जीवन में बहुत बड़ा अन्याय हुआ है। इसकी ओर संकेत करते हुए कवि कहता है -

"आया वह याद कौन, गया कौन भूल?
आस-पास का पीला सूनापन दहक गया
सोये सन्नाटे में गीत एक महक गया
धूलीमय रंग हुआ रंगमयी धूल।"[52]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि इस काव्य-संग्रह में कुछ गीत, कुछ ग़ज़लें, तो कुछ कविताएँ संकलित हैं। यह कविताएँ अपना एक अलग महत्त्व रखती है। उसमें युगीन जीवन का यथार्थ है। इसके साथ ही विभिन्न समस्याओं को उजागर करने का सफल प्रयास मिश्र जी ने किया है। अपनी अभिव्यक्ति में कवि ने कहीं भी पर्दा नहीं रखा है। सभी अकृत्रिम लगता है। उनकी कविताओं में प्रकृति, प्रणय तथा आत्मानुभूति आदि का स्पष्ट चित्रण मिलता है।

2.2 'बाजार को निकले हैं लोग' - रामदरश मिश्र :

'बाजार को निकले हैं लोग' यह मिश्र जी का गज़ल-संग्रह है। इसका

प्रथम प्रकाशन सन् 1986 में विकास पैपर बैंक्स, दिल्ली द्वारा हुआ है। यह 60 पृष्ठों का ग़ज़ल-संग्रह है। इसमें कुल 54 गज़लें संकलित हैं। इन गज़लों के नीचे मिश्र जी ने तिथियाँ लिखी हैं। यह तिथियाँ परिवेश समझाने में महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। मिश्र जी ने अपनी जीवन यात्रा में सफल गज़लें लिखने का प्रयास किया है।

वास्तविक रूप से आधुनिक काल के पूर्व की ज्यादा तर गज़लों में प्रेमसंबंधी चित्रण ही मिलता है । लेकिन दुष्यंतकुमार ने उन्हें अलग मोड़ दिया है। उन्होंने ग़ज़लों के माध्यम से आम आदमियों की पीड़ाओं का चित्रण किया है। मिश्र जी की भी गज़लों में आम आदमी की पीड़ाओं का चित्रण मिलता है। इस संग्रह की ग़ज़लें प्रेम, प्रकृति तथा विविध सामाजिक समस्याओं को चित्रित करती हैं। उन गज़लों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

(1) 'बाजार को निकले हैं लोग' इस ग़ज़ल-संग्रह की यह प्रथम गज़ल है। रामदरश मिश्र जी मानवतावादी रचनाकार हैं। आम जनता का दुख देखकर उनका मन पिघल जाता है। हमारे आजाद देश में भी किसान-मजदूरों की स्थिति परकटे पंछी की तरह हो गयी है। इस हालात तक पहुँचाने का काम इस व्यवस्था ने किया है। आज बिगड़ी हुई व्यवस्था के कारण समाज दिशाहीन है। सामान्य जनता नेताओं की ओर आशा से देखती है लेकिन उनकी ओर देखना अपेक्षा-भंग ही है। जनता को सिर्फ कर्मरत रहने का संदेश दिया जाता है। लेकिन उनके हाथ कुछ नहीं लगता। इसलिए मिश्र जी कहते हैं -

"कहते हैं वे कि रुकिये नहीं, चलते जाइये
चलते तो हम हैं, चल के मगर जाएँ किधर को।"[53]

इस गज़ल के माध्यम से कवि ने वर्तमान स्थिति पर व्यंग्य किया है।

(2) इस संग्रह की मिश्र जी की यह दूसरी गज़ल है। इसका लेखन उन्होंने 18 मार्च, 1983 में किया है। इस गज़ल में समाज में आये बदलाव का चित्रण किया है। यह बदलाव आदमी को एक ओर से अच्छाई की तरफ ले जा रहा है तो दूसरी तरफ बुराई की ओर। आदमी की हालत द्विधाजनक हो गयी है। जनता का दर्द व्यक्त करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"जाईये चढ़ जाइये, रुकिये नहीं
दिल नहीं, वह दर्द की मीनार है।"[54]

(3) तीसरी गज़ल में रामदरश जी ने सच्चाई और झूठेपन का फर्क प्रस्तुत किया है। आज बाजार में हर जगह सच्चाई नहीं चलती। कितना भी बड़ा आदमी हो उसके पीछे कुछ-न-कुछ बुराई छिपी हुई होती है। मिश्र जी जैसे गीने-चुने लोग ही है जो सच्चाई का रास्ता अपनाकर अपनी ऊँची मंजिल तक पहुँचते हैं। इसलिए कवि लिखता है -

"खुदा का शुक्र आपसे न कुछ लिया मैंने
नहीं तो उम्र बीत जाती खुद को खोने में।"[55]

(4) रामदरश मिश्र जी ने प्रस्तुत चौथी गज़ल में राजनीति तथा न्याय-व्यवस्था पर व्यंग्य किया है। 15 अगस्त, 1947 को देश आजाद हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात् 26 जनवरी, 1950 में संविधान का प्रस्ताव पारित हुआ। इसके द्वारा भारत धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया है। नेता लोगों ने अपने स्वार्थवश इस धर्मनिरपेक्षता को 'सर्वधर्म समभाव' के रूप में स्वीकार किया। एक बार कुर्सी हासिल करने पर राजनीतिज्ञ जनता पर रोब जमाते हैं। जनता को अपने काम के लिए उनके सामने झुकना पड़ता है। उन्हें नेता लोगों की चापलूसी करनी पड़ती है। इसके ओर संकेत करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"वे जा रहे तो कहीं रास्ता रुका होगा
वे उठ रहे हैं तो कोई कहीं झुका होगा।"[56]

जो हालत राजनीति की है वही हालत न्याय-व्यवस्था की है।

"सबूत लेके कहाँ जा रहा है तू साथी
तेरे बिना ही तेरा न्याय हो चुका होगा।"[57]

(5) मिश्र जी पाँचवी गज़ल में कहते हैं कि हर बार अच्छाई तोड़ने के लिए बुराई उभरती है। हम देखते हैं कि प्राचीन काल से समाज से बुराई नष्ट करने का प्रयास किया जा रहा है मगर वह खत्म नहीं होती। आधुनिक काल में तो यह हालत बहुत खतरनाक हो गयी है। सन् 1960 के बाद राजनीतिक क्षेत्र में बहुत बदलाव आया। वैसे देखा जाय तो स्वतंत्रता से पहले नेता लोगों में जो देशप्रेम था वह स्वार्थी वृत्ति के कारण कम होता गया। इसके बारे में मिश्र जी अपनी गज़ल में कहते हैं -

"रोशनी में बड़ा अँधेरा है
आज यह कौन-सा सवेरा है

रात भर साथ हम चले जिसके
दिन में देखा कि वह लुटेरा है।"[58]

(6) यह मिश्र जी की छठी गज़ल है। इस गज़ल के माध्यम से समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार का चित्रण किया है। सामान्य कर्मचारी से लेकर बड़े अधिकारी तक, छोटे नेता से लेकर मंत्री महोदय तक भ्रष्टाचार फैल चुका है। किसान, मजदूर दिन-रात मेहनत करते हैं मगर उनके हाथ में कुछ भी नहीं लगता। इसलिए मिश्र जी अपनी गज़ल में लिखते हैं -

"हाथ कुछ आया न; तू फसले उगाता रह गया
चर गये पशु खेत, तू पंछी उड़ाता रह गया।"[59]

"बसें, कारें, गाड़ियाँ गुजरी, गुजरती ही गयी
रास्ते पर तू खड़ा बाँहें उठाता रह गया।"[60]

(7) यह रामदरश जी की साँतवीं गज़ल है। इसमें कवि ने वर्तमान समाज में व्याप्त भय का चित्रण किया है। महानगरीय जीवन की विद्रुपता, भौतिकता प्रधान सभ्यता के फलस्वरूप आम आदमी का जीवन असुरक्षित बना है। लूटमार, राजनीतिक स्वार्थ से प्रेरित दलों के आंदोलन से आदमी का जीवन भयभीत हो गया है। स्वार्थ के लिए आदमी रिश्ते तोड़ता और जोड़ता है। इस भयावह स्थिति को व्यक्त करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"हुआ क्या हँसते-हँसते आप रुक गये सहसा
किसी के आँख का आँसू बना लहू तो नहीं?"[61]

(8) यह मिश्र जी की आँठवीं गज़ल है। इस गज़ल में मिश्र जी ने स्वयं अपने बारे में लिखा है। मिश्र जी ने सदैव आम आदमी को सतर्क करने का प्रयास किया है। उनकी रचनाओं में आम आदमी तथा देहाती जनता को ज्यादा स्थान मिला है। आम आदमी मिश्र जी की रचना का प्राण है। मिश्र जी को जीवन में बहुत कष्ट सहना पड़ा है। फिर भी अपने दर्द को वे स्वयं पीते रहें। मिश्र जी प्रगतिशील रचनाकार हैं। वह यथार्थ का छोर कभी नहीं छोड़ते। उन्होंने ग्रामीण जनता का दुख करीब से देखा तथा भोगा है। वही चित्र वे अपनी रचना में उतार देते हैं। कवि ने गज़ल में लिखा है -

"आपने तो सहेज कर रक्खी हीरे सी
जिंदगी खेत में पानी सी गँवा दी मैंने।"[62]

(9) मिश्र जी की नौंवी गज़ल महानगरीय जीवन की विद्रुपताओं को चित्रित करती है। स्वतंत्रता के पश्चात् औद्योगिक प्रगति के कारण महानगरों का विकास हुआ। महानगरों के कारण आदमी-आदमी में बिखराव की स्थिति पैदा हुई है। इन त्रासद स्थितियों का यथार्थ चित्रण मिश्र जी ने अपनी गज़लों में किया है। मिश्र जी इस भयावह स्थिति का

चित्रण करते हुए कहते हैं -

"क्यों हुआ, कैसे हुआ, यह क्या हुआ
घूमता है प्रश्न एक डरा हुआ

बिना मौसम शहर में आयी बहार
हर परिंदा डाल पर सहमा हुआ।"[63]

(10) मिश्र जी की दसवीं गज़ल में प्रेमाभिव्यक्ति का चित्रण हुआ है। गज़ल प्रेमाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। अरबी, फारसी तथा उर्दू में गज़ल का उपयोग प्रेमाभिव्यक्ति के लिए किया जाता था। इसी प्रकार मिश्र जी की भी प्रेमाभिव्यक्ति संबंधी कई गज़लें मिलती हैं क्योंकि प्रेम मनुष्य जीवन का अविभाज्य अंग है। प्यार जीवन में ताजगी तथा शांति लाने का कार्य करता है। कवि को भी शरद की भोर में अपनी प्रेयसी की याद आती है। उनका मन थरथराने लगता है। इसे व्यक्त करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"शरद की भोर है कि याद तेरी आयी है
युगों से मन में जमी रात थरथराई है।"[64]

(11) मिश्र जी की ग्यारहवीं गज़ल प्रेमाभिव्यक्ति संबंधी है। प्रेमी-युगल एक-दूसरे से न मिलने के कारण उनकी हालत बहुत पीड़ादायी हो जाती है। इस विरह अवस्था में उन्हें अपने प्यार में बीतें सुहावने दिनों की यादें आती हैं और उसी यादों में वे खोये रहते हैं। ऐसे प्रेमियों की भेंट जब कई दिनों के बाद हो जाती है तो वे एक-दूसरे को देखकर चौंक उठते हैं। क्योंकि इतने दिनों के बाद दोनों की भी पीड़ा अधिक दर्दनाक रही है। वे सदैव एक-दूसरे का खयाल करते हैं। बहुत दिनों के बाद मिलने पर एक-दूसरे को सवाल करते हैं -

"तुमने क्या अपना हाल किया है दिनों के बाद?
किसने ये फिर सवाल किया है दिनों के बाद"[65]

(12) यह मिश्र जी की बारहवीं गज़ल 14 मई, 1983 में लिखी है। सन् 1960 के बाद भारतीय समाज में जलद गति से परिवर्तन आया। रिश्तों में बिखराव तथा मानवीय मूल्यों का विघटन हुआ। इस भयंकर स्थिति का वर्णन गज़लकार मिश्र जी ने इस गज़ल में किया है। देश में अनेक समस्याओं का उद्भव हुआ। गरीबी, बेकारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता, आतंकवाद, अलगाववाद आदि समस्याओं के कारण आदमी एक-दूसरे से कटता गया। हर-एक अपनी-अपनी समस्याओं से ग्रस्त है। दूसरों की ओर ध्यान देने के लिए किसी के भी पास समय नहीं है। जैसे की आदमी के सुख-शांति पर कुहरा-सा

छाया है। देश की स्थिति की ओर संकेत करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"देश ध्यानी बन गया, यह मेहरबानी आपकी
कान से आवाज, नजरों से नजरें कट गये।"[66]

(13) मिश्र जी की तेरहवीं ग़ज़ल 7 अगस्त, 1983 में लिखी है। इस ग़ज़ल में दलबदलू नेताओं की राजनीति पर व्यंग्य किया है। सन् 1980 के पहले भारत में केवल दो ही दल प्रमुख थे। सन् 1980 के बाद विभिन्न दलों का निर्माण हुआ। सत्ता स्थापने के लिए एक दल को दूसरे दल का सहारा लेना पड़ा। कोई भी ऐसा दल नहीं रहा कि ज्यों संसद में अपना बहुमत सिद्ध कर सकें। इसी कारण कुर्सी हासिल करने के लिए दलबदलीय राजनीति को प्रोत्साहन मिला। राजनीतिक अस्थिरता की ओर संकेत करते हुए देवराज कहते हैं - "राजनीतिक अस्थिरता के तीन प्रभाव सामने आए। पहला यह कि दल-बदल को प्रोत्साहन मिला। दूसरा यह कि प्रशासन में घातक अकुशलता आई और तीसरा यह कि लोकतांत्रिक भारत में दलीय तानाशाही के विकास को प्रोत्साहन मिला।"[67] जब उन्हें कुर्सी मिलती है तो वे किसी के नहीं रहते। वे सबके मुखिया बन जाते हैं। वह चाहे राजनीति में कैसा भी खेल खेले। इसलिए मिश्र जी कहते हैं -

"दोस्त, भाई, बाप कुछ भी नहीं, बस ईश्वर हैं आप
ना जमीं, ना आस्मां पर फ़कत कुर्सी पर है आप

इस शिखर से उस शिखर तक कूदते ही रह गये
गयीं सदिया पर अभी तक नस्ल से बंदर है आप।"[68]

(14) 9 अगस्त, 1983 में लिखी चौदहवीं ग़ज़ल में मिश्र जी ने स्वयं के बारे में बताया है। इस ग़ज़ल के बारे में वशिष्ठ अनूप कहते हैं - "जब वे महानगर की वैभवशाली अट्टालिकाओं, बड़े-बड़े महलों, होटलों और पूँजीपतियों की शानो-शौकत की जिंदगी को देखते हैं तो तुरंत उन्हें वे सामान्य जन याद आते हैं जिनकी मेहनत-मशक्कत के बल पर आँसुओं के सागर में ये विलासिता के टापू निर्मित हुए हैं। डॉ. मिश्र ऐसे लोगों से एक प्रकार का जुड़ाव महसूस करते हैं।"[69] जमीन से जुड़ाव के साथ उनको जीवन में अनेक दुखों का सामना करना पड़ा। कभी आर्थिक परिस्थितिवश तो कभी बाहरी साहित्यिक राजनीति वश। फिर भी वे पीछे नहीं हटे। अपने दुख को व्यक्त करते हुए ग़ज़ल में कहते हैं -

"काँटें चुभ-चुभ के हथेली में फिसल जाते हैं
दिल की गहराइयों में फूल धँसा है कोई।"[70]

(15) पंद्रहवी गज़ल 12 अगस्त, 1983 में लिखी है। 15 अगस्त, 1947 को भारत को आजादी मिली। हम अंग्रेज सरकार के जुल्मी शासन से मुक्त हुये। इसलिए 15 अगस्त यह दिन भारत में राष्ट्रीय त्यौहार के रूप में मनाया जाता है। सभी भारतीयों के लिए यह खुशी का दिन है। आजादी के अवसर पर लिखी इस गज़ल में मिश्र जी का राष्ट्रप्रेम प्रतित होता है। आजादी के बाद लोगों के मन में बहुत सपने थे। लोगों के मन में आजादी के बाद सामान्य जन सुखी होने की अपेक्षाएँ थीं। लेकिन यह आशाएँ तबाह हुई। लोगों का जीवन जैसे के तैसे रह गया। उनकी दयनीय दशा पहले से भी अधिक बिकट हो गयी। इसे स्पष्ट करते हुए मिश्र जी लिखते हैं -

"सुबह हुई तो मगर रंग नहीं सुनहरा है
रात का सहमी निगाहों में अभी पहरा है।"[71]

(16) इस सोलहवीं गज़ल में मिश्र जी का मातृभूमि के प्रति प्रेम व्यक्त होता है। मातृभूमि के प्रति प्रेम राष्ट्रीय भावना का द्योतक होता है। मिश्र जी गोरखपुर जिले के डुमरी नामक ग्राम से दिल्ली जैसे महानगर में बसे हैं। गाँव और महानगर में बहुत फर्क होता है। महानगरीय जीवन के कारण परिस्थितिनुसार लोगों के बर्ताव में परिवर्तन आया है। किसी के प्रति लगाव या प्यार कम होता जा रहा है। लोग मिलते हैं तो उपरी तौर से, हँसते हैं तो भी नाप तौलकर। सब जीवन ही कृत्रिम बन गया है। देहात जैसी आपसी प्रेम की भावना महानगर में लुप्त होती जा रही है। यह सब देखकर गज़लकार मिश्र जी का मन दुखी हो जाता है। देहात और महानगर का फर्क व्यक्त करते हुए वे कहते हैं -

"जंगल से हम शहर को निकले, शहर में जंगल उग आये
वह जंगल जंगल था यारो, यह जंगल तो ज्ञानी है।"[72]

(17) सतरहवीं गज़ल मिश्र जी ने 11 अक्तुबर, 1983 में लिखी है। मिश्र जी की यह गज़ल नियति पर प्रकाश डालती है। आज हम देखते हैं कि लोग प्रयास करना छोड़कर अपने भाग्य को कोसते रहते हैं। गज़लकार के अनुसार हमें सदैव कर्मरत रहना चाहिए। दुनिया किसी को कुछ नहीं देती। जो कमाना है उसे हमें अपनी मेहनत से कमाना है। हर बात पर दुख व्यक्त करना व्यर्थ है। गज़लकार के जीवन में ऐसे बहुत दुख के प्रसंग आये। उन्होंने उसका धैर्य से सामना किया। जितना उन्हें नीचे दबाया गया उतने ही वे

ऊपर उठते गये। उसकी फिक्र उन्होंने कभी नहीं की। इसे व्यक्त करते हुए ग़ज़लकार कहते हैं -

"दुनिया ने सहारे नहीं कुछ कम तो दिये हैं
जगने के लिए साथ में कुछ गम तो दिये हैं।"[73]

(18) रामदरश मिश्र जी की अठारहवीं ग़ज़ल 25 नवंबर, 1983 में लिखी है। भारत में आज़ादी को लेकर जनसामान्य लोगों के मन में बहुत कुछ अपेक्षाएँ थीं। यह बात अवधनारायण मुद्गल से हुई बातचीत से अधिक स्पष्ट होती है। स्वतंत्रता के पश्चात् गाँव की हुई हालत बताते हुए मिश्र जी कहते हैं - "जमींदारी तो टूटी है। जमींदारी टूटने का एक सुफल यह होना था कि जिनके पास खेत नहीं हैं उन्हें खेत मिलें। लेकिन उनके पास जब पैसे नहीं थे तो वे खेत कहाँ से खरीदते। यह काम था सरकार का कि जिनके पास खेत नहीं उनको खेत दिया जाए। लेकिन खेत जमींदारों से लेकर बेचे गए। जिनके पास पैसे थे उन्होंने खरीद लिए और जमींदारों ने अपने खेत बेचकर या अपने संबंधियों के नाम लगाकर पैसे इकट्ठे कर लिए। अब तो सामंत सामंत ही नहीं रहे, पूँजीपति भी हो गए। यानी उनकी विकृतियाँ दोहरी हो गई।"[74] इस प्रकार यह पूँजीपति अपनी पूँजी कल-कारखानों के दलाली में लगाकर बड़े होते रहे, तो सामान्य जनता सामान्य ही रह गयी। उन्हें रोजी-रोटी मिलना भी मयस्कर हो गया। इस हालात को व्यक्त करते हुए मिश्र जी अपनी ग़ज़ल में कहते हैं -

"हाँफती ही रह गयीं भटकी हवाएँ प्यास में
घुमड़ते ही रहे बादल सावनी आकाश में

आपकी जादूगरी ने क्या नहीं पैदा किया
हम बिछे ही रह गये बस रोटियों की आस में।"[75]

(19) ग़ज़लकार मिश्र जी की यह 1977 में लिखी ग़ज़ल है। मिश्र जी की इस ग़ज़ल में व्यवस्था के प्रति विद्रोह दिखाई देता है। आज की शासन-व्यवस्था गलत दिशा की ओर जा रही है। उनके खिलाफ आवाज उठाने की किसी की ताकत नहीं है। जो उनके खिलाफ आवाज उठायेगा उनका मुँह बंद किया जाता है। समाज भी एक साथ व्यवस्था के खिलाफ लड़ने को तैयार नहीं होता। मिश्र जी कहते हैं -

"खून के दाग उनके चेहरे पर
हमसे कहते हैं - आप मुँह धो लें।"[76]

(20) मिश्र जी की यह 1979 में लिखी बीसवीं गज़ल है। कहा जाता है कि जिंदगी सुख-दुख का संगम है। जीवन में कभी चढ़ाव तो कभी उतार आते ही रहते हैं। इन सभी बातों का आस्वाद लेना बहुत जरूरी है। यही बात इस गज़ल से स्पष्ट होती है। गज़लकार जिंदगी में सभी चीजों का आस्वाद लेने का संदेश देते हैं। इसलिए गज़लकार अपनी गज़ल में कहते हैं -

"निकली है सुबह न्हाके आँख मल के देखिए
बैठे हुए हैं आप, जरा चल के देखिए

है खा रही जमीन, सितारों के फासले
कितनी हसीन आग है ये जल के देखिये।"[77]

(21) इक्कीसवीं गज़ल रामदरश मिश्र जी ने 12 दिसंबर, 1983 में लिखी है। इसमें लोगों की वेदना को बड़े प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है। इन्सान जीवन जीने के लिए विवश है। मनुष्य इन्सानियत के नाते स्वयं का दुख दूर रखकर दूसरों की पूछताछ तो अवश्य करता है। दूसरों के सुख-दुख को वह झेलना भी चाहता है। ऐसे व्यक्ति से मिश्र जी अपनी गज़ल का विषय बनाते हैं। कहते हैं -

"जख्मों से भरे लोग हैं रोते हुए मिलते
आपस में पूछते हैं कि राजी खुशी तो है।"[78]

(22) मिश्र जी की बाईसवीं गज़ल सन् 1977 में लिखी है। यह गज़ल राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डालती है। 1977 के राजनीतिक परिस्थिति को चित्रित करते हुए डॉ. देवराज कहते हैं - "1977 में आम चुनावों की घोषणा की गई। कांग्रेस सरकारी की जनविरोधी नीतियों के कारण जनता क्षोभ से भरी थी। अत: उसने पाँच राजनीतिक दलों के विलस से बनी 'जनता पार्टी' को सत्तारूढ कर दिया। श्रीमती इंदिरा गांधी का दल बूरी तरह पराजित हो गया। यहाँ तक कि स्वयं इंदिरा गांधी रायबरेली से चुनाव हार गई। जनमानस में इस महत्त्वपूर्ण घटना को 'दूसरी आजादी' कहकर पुकारा गया।"[79] इस काल की राजनीतिक परिस्थिति पर विचार किया जाय तो हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि किसे कुर्सी पर बिठाना और किसे हटाना, यह सब जनता के हाथ में है। इसी राजनीतिक उथल-पुथल को इस गज़ल के माध्यम से चित्रित किया है। चाहे 'दूसरी आजादी' की घोषणा क्यों न हो, लेकिन जनता की हालत में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। इसे चित्रित करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"पगडंडियों को बाँध लिये जा रहे कहाँ
बाजार बंद आपका है, हाथ मीजिये

लहरों को कोसते हैं रहे तीर खड़े आप
कितना हैं थक गये जनाब, चाय पीजिये।"[80]

(23) इस संग्रह की तेइसवीं गज़ल 6 मार्च, 1984 में लिखी है। इसमें देश की वर्तमान स्थिति का चित्रण किया है। देश के कर्णधार देश को दो-दो हाथों से लूटकर अपनी शान-शौकत पूरी करते हैं। ऊँचे देश के पंक्ति में बैठने के लिए देश की हालत सुधारने की घोषणा करते हैं लेकिन आम जनता के हाथ कुछ भी नहीं आता। देश की भयानक स्थिति की ओर संकेत करते हुए कहते हैं -

"यों हुआ कत्ल सबके सामने
पर अदालत के लिये यह राज है।"[81]

(24) मिश्र जी की यह चौबीसवीं गज़ल 1954 में लिखी है। इस प्रेमसंबंधी गज़ल में वियोगी मन की झलक दिखाई देती है। दो प्रेमी बिछुड जाने के बाद उनकी हालत बहुत दीन-हीन होती है। मन में मिलन की चाह होकर भी एक-दूसरे से संपर्क नहीं कर सकते। इस तड़प को व्यक्त करते हुए गज़लकार कहते हैं -

"कोई आया न कोई खत, न तार ही आया
लौट अखिर को मेरा इंतजार ही आया
× × ×
रातभर खोल के सीना पड़ा रहा सागर
कहीं न चाँद निकला, न ज्वार ही आया।"[82]

(25) पच्चीसवीं गज़ल 12 मार्च 1984 में लिखी है। इस गज़ल के माध्यम से गज़लकार रामदरश मिश्र जी का स्वाभीमान व्यक्त होता है। मिश्र जी ने अपने आपको किसी दल में शामिल होकर खुद को बड़ा बनाने की कोशिश नहीं की है। उन्होंने अपना लेखन स्वच्छंद रूप से किया। उन पर किसी साहित्यिक या राजनीतिक दल का दबाव नहीं है। इस मंतव्य को व्यक्त करते हुए 1998 में डॉ. शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी ने लिये साक्षात्कार में वे कहते हैं - "जब यह स्पष्ट हो गया है कि पुरस्कार भी राजनीति का शिकार हो गया है तब किसी भी साहित्यकार के लिए उसकी अहमियत हो सकती है। इसलिए उसके लेखन पर भी उसका अपेक्षित या अनपेक्षित दबाव नहीं पड़ता। मैं अपने संदर्भ में भली-भाँति

जानता हूँ कि मुझे नामी गिरामी पुरस्कार नहीं मिलेंगे क्योंकि मैं उन लोगों से किसी भी तरह किसी भी स्तर पर जुड़ा नहीं हूँ। जो पुरस्कार देते दिलवाते हैं या अपने से अनजुड़े लोगों को काटते रहते हैं। हां, पुरस्कार के लिए लहु-लूहान होनेवालों में न होकर भी सहज भाव से मिले पुरस्कार सहज भाव से स्वीकार कर लेता साहित्यिक नाटक नहीं करता।''[83] रामदरश जी का साहित्य यथार्थवादी साहित्य होकर भी आलोचकों ने उन पर अन्याय किया। यही बात उठाते हुए मिश्र जी कहते हैं -

''आपने कौडियाँ अपनी मुहर सी खनकाई
मेरा सोना भी आपके लिये घेला न हुआ।''[84]

(26) ये छब्बीसवीं गज़ल 26 मार्च, 1984 में लिखी है। इस गज़ल में लौकिक प्रेम चित्रण मिलता है। उनकी प्रेम संबंधी गज़लों के संबंध में वशिष्ठ अनूप लिखते हैं - ''रामदरश जी की गज़लों में प्रेम के कई रूप हैं। इनमें सौदर्य का प्रभाव भी है। उसके प्रति आकर्षण भी है और विरह की पीड़ा भी है।''[85] जब प्रेमी किसी के प्रति आकर्षित होता है तो मिलन की इच्छा उसके मन में स्वाभाविक ही पैदा होती है। गज़लकार ने इसी दशा का चित्रण किया है। प्यार के अनेक स्थितियों के साथ पहली स्थिति का वर्णन बहुत मार्मिक ढंग से किया है। जब प्रेमी अपनी प्रेयसी से पहली बार पूछता है तो वह ना कहती है। परंतु उनके ना में ही हाँ होती है। इसे चित्रित करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

''झुलस-झुलस के भी पर्वत है हरा हो उठता
'नहीं नहीं' की आग में छिपी है 'हाँ' कोई।''[86]

(27) यह सत्ताईसवीं गज़ल 1954 में लिखी है। मिश्र जी ने इसमें देश की स्वातंत्र्योत्तर स्थिति पर प्रकाश डाला है। इस स्थिति को कोई रोक नहीं सका। हर तरफ डरावना वातावरण छाने लगा है। इस डरावने वातावरण की ओर संकेत करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

''उड़ी जा रहीं सर्द झीलें ज्यों छन-छन
दिशाओं के दिल थरथराये हुए हैं।''[87]

(28) 21 सितंबर, 1984 में लिखी इस गज़ल में सांप्रदायिक समस्या को चित्रित किया है। 1947 में भारत को आजादी मिली। अंग्रेज देश छोड़कर जाते-जाते हिंदू-मुस्लिमों में झगड़े लगाकर चले गयें। अगर वे भारतीयों को आपस में नहीं लड़वाते तो बहुत पहले ही उन्हें भारत छोड़कर जाना पड़ता। 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान

स्वतंत्र हुआ। इससे सीमा-बांधवों की स्थिति बहुत महाभयंकर हो गयी। धर्म के नाम पर हिंदू-मुस्लिम एक-दूसरे के साथ लड़ते रहें। धर्म जो आदमी-आदमी को जोड़ने का साधन था वह एक-दूसरे को तोड़ने लगा। इसलिए मिश्र जी अपनी इस गज़ल में कबीराना अंदाज में लिखते हैं -

> ''वह न मंदिर में, न मस्जिद में, न गुरुद्वारे में है
> वह पराई पीर वाली आँख के तारे में है।
> खोजते हो तुम शिकारी को कहाँ जंगल के बीच
> वह तो पोशिंदा कहीं भीतर के अँधियारे में है।''[88]

(29) 29 मार्च, 1984 में लिखी उनतीसवीं गज़ल में कवि ने आज की बदलती परिस्थितियों की ओर संकेत किया है। यह बदली हुई स्थिति बुद्धिजीवी लोगों को बेचैन करती है। यह सामाजिक परिस्थिति इतनी परिवर्तित हो गयी है कि आदमी-आदमी से अलग होता जा रहा है। विवेकबुद्धि का ऱ्हास होने के कारण खून-खराबों से आदमी त्रस्त है। इन परिस्थितियों की ओर संकेत करते हुए मिश्र जी लिखते हैं -

> ''धुआँ है धूप का छाया कि शाम है यारो
> कहाँ है हम, ये कौन सा मुकाम है यारो
> × × ×
> झुकी हुई हैं शर्म से जमीर की आँखें
> पास लाशों की कैसी धूमधाम है यारों।''[89]

(30) 1960 में लिखी मिश्र जी की तीसवीं गज़ल में प्रेम संबंधी चित्रण मिलता है। चाहे भारतेंदु हो या जयशंकर प्रसाद, निराला, हरिकृष्ण 'प्रेमी', शमशेर, दुष्यंतकुमार, चन्द्रसेन विराट, कुँअर बेचेन, त्रिलोचन जी हो, उनकी गज़लों में सामाजिक चित्रण के साथ कई प्रेम-संबंधी भी गज़लें मिलती हैं। इस गज़ल में देहाती प्रियकर के मन में उमड़े प्यार की दशा का चित्रण मिलता है। देहात में सभी लोग एक-दूसरे को अच्छी तरह से जानते हैं। देहात में अब भी प्रेमियों में नैतिकता शेष है। वे बड़ों का आदर करते हैं लेकिन उमर के अनुसार प्रेम हो जाता है। फिर भी उस प्रेमी से बातें नहीं होती। बात करने का जी तो करता है मगर नैतिकता आड़ आती है। फिर भी प्रेमी अपनी प्रेमिका के घर के सामने चक्कर काटता रहता है। प्रेमिका यह सब जानती है मगर वह भी मजबूर है। इसी प्रेमिका के मन के भाव को व्यक्त करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"तू लौट गया आके मेरे घर के सामने
वरना न कोई सर था मेरे सर के सामने

है लौटने का गम नहीं, मुझको तो यह मलाल
मैं रोक भी न पाया गाँव भर के सामने।"[90]

(31) 10 जून, 1984 में लिखी यह प्रेमसंबंधी गज़ल है। आज समाज में भयानकता इतनी बढ़ गयी है कि प्रेमी-युगलों की हत्या की जाती है। इस भयानकता के कारण वे एक-दूसरे से मिल नहीं पातें। इतना होकर भी वे भविष्य के बारे में जरूर सोचते हैं। उनके मन की स्थिति का वर्णन करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"क्या करूँ? जागूँ कि सोऊँ? या गाऊँ चुप रहूँ?
एक पत्ते सा अजनबी डाल पर अटका हुआ।"[91]

जितने भी प्रेमी एक-दूसरे से दूर होते हैं, उतनी ही तड़प और बढ़ जाती है। वे कहते हैं -

"आज तो कट जायेगा ही, आयेगा कल कौन-सा
पूछ मत ऐ दिल, चला जा चला जा सहता हुआ।"[92]

(32) यह बत्तीसवीं गज़ल 12 जून, 1984 में लिखी है। मिश्र जी ने इस गज़ल के माध्यम से उपभोक्तावादी संस्कृति की ओर संकेत किया है। उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण मानवीय रिश्तों में दुराव आया है। आज इन्सान को इन्सान के रूप में नहीं तो एक वस्तु के रूप में भी देखा जाता है। वस्तु की तरह आदमी का मूल्य उपयोगिता पर आँका जाता है। ऐसी स्थिति से मिश्र जी जैसे संवेदनशील व्यक्ति का मन प्रभावित हो जाता है। वे कहते हैं -

"हम तो बरबादियों के साये हैं
कहिये कैसे हुजूर आये हैं
हो गया है हमारा डर दूना
सामने आप सिर झुकाये हैं।"[93]

इस नकली दुनिया की ओर संकेत करते हुए इस गज़ल के बारे में राधेश्याम तिवारी लिखते हैं - "आम तौर पर झुकना शिष्टता का प्रतीक है लेकिन जब कोई मतलबी व्यक्ति शिष्टाचार का नाटक करें तो निश्चय ही उससे सावधान होने की जरूरत है। तुलसी की दृष्टि में ऐसे लोगों का झुकना धनुष्य या बिल्ली की तरह है जो झुकते ही प्रहार करते हैं।"[94] ऐसे लोगों से सावधान रहना आवश्यक है लेकिन वे जल्दी पहचाने भी नहीं जाते।

(33) मिश्र जी की 1957 में लिखी यह प्रेमसंबंधी ग़ज़ल है। जिस प्रकार आदमी को जीवन में अन्य चीजों की जरूरत है उसी प्रकार प्यार भी एक जरूरत है। मिश्र जी की प्रेमसंबंधी ग़ज़लों में चाँद प्रतीक का प्रयोग कई बार आया है। इस ग़ज़ल में 'चाँद' के साथ 'धूप' और 'गुलमुहर' के प्रतीकों का भी प्रयोग मिलता है। गुलमुहर अपने अलग सौंदर्य को प्रकट करता है। दुख में भी एक अनोखा सौंदर्य देखने की ग़ज़लकार की दृष्टि बड़ी सराहनीय है -

''जाने क्यों देखता रहा, जब जब
धूप में हँसता गुलमुहर देखा।''[95]

जीवन में अनेक प्रसंग आते हैं जिससे जीवन सुधारने का मौका मिलता है। इसकी ओर संकेत करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

''जबसे देखा है तुझे ओ मासूम !
सारी दुनिया को नयी नजर से देखा।''[96]

(34) इस संग्रह की चौंतीसवीं ग़ज़ल 13 दिसंबर, 1983 में लिखी है। इस संदेशात्मक ग़ज़ल में स्वयं रचनाकार का स्वाभिमान दृष्टिगत होता है। मिश्र जी दल से ज्यादा समाज को महत्त्वपूर्ण मानते हैं। रामदरश जी के 'अंतरंग' नामक किताब में डॉ. स्मिता मिश्र द्वारा संपादित साक्षात्कारों में इसका कई बार जिक्र हुआ है। वे दल के लिए अपने में बसा कवि या रचनाकार अलग नहीं कर सकते। वे कहते हैं -

''अपने को छोड़ आप तक आता नहीं हूँ मैं
इसमें क्या खता आपकी भाता नहीं हूँ मैं''[97]

मिश्र जी में इतना स्वाभिमान है कि उनमें राजनीतिक चालाकी थोड़ी भी नहीं है। इतना बड़ा रचना-संसार मगर यथार्थ के धरातल पर टिका है, जो दूसरों की रोशनी के लिए स्वयं खत्म होता है।

''जलती रहेगी जलती हुई मुझमें कोई आग
दीपक के सिवा कुछ भी जलता नहीं हूँ मैं''[98]

(35) इस संग्रह की पैंतीसवीं ग़ज़ल सन् 1956 में लिखी है। हिंदी तथा अन्य भाषाओं के कई साहित्यिकों की भी परंपरा से ही साहित्यिक क्षेत्र में उपेक्षा हुई है। जैसे 'निराला' हो या 'मुक्तिबोध', उनकी रचनाओं के साथ उनके जीवनकाल में न्याय नहीं हुआ। उनकी ओर आलोचकों तथा प्रकाशकों ने भी उपेक्षा की दृष्टि से देखा मगर जब

उनका साहित्य प्रकाश में आया तब वे हिंदी साहित्य के लिए महान रचनाकार सिद्‌ध हुए। वही हालत रचनाकार रामदरश मिश्र जी की है। आलोचकों ने उनकी रचना के साथ न्याय नहीं किया। लेकिन पाठकों ने उनके साथ न्याय किया है। यही भाव उनकी गज़ल में प्रकट होता है।

"तुमने फेंका मुझे ज्यों डर कोई
मिल गया राह में शिखर कोई"[99]

(36) 16 जून, 1984 में लिखी इस संग्रह की छत्तीसवीं गज़ल में कवि ने फुटपाथ पर रहनेवाले लोगों का दुख व्यक्त किया है। मिश्र जी की गज़लों के बारे में सुभाष भदौरिया लिखते हैं - "मिश्र जी ने अपनी गज़लों में लोगों की वेदना को बड़े प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है। आज हर शख्स बेघर है - घायल है।"[100] फुटपाथ पर रहनेवाले लोगों के साथ यह शहरी व्यवस्था न्याय नहीं कर पाती। मिश्र जी का 'शोर मत करो, आदमी सो रहे हैं!' इस निबंध में फुटपाथ पर रहनेवाले लोगों के दु:ख का विस्तार से वर्णन मिलता है। एक पागल आदमी इन लोगों का दु:ख समझता है मगर पढ़े-लिखे लोग इसकी ओर ध्यान नहीं देते। इन फुटपाथ पर रहनेवाले लोगों की भी कुछ आशाएँ होगी। उनका दु:ख व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं -

"खत्म फुटपाथ का सफर होता
मेरा अपना भी कोई घर होता।"[101]

(37) यह सैंतीसवीं गज़ल सन् 1980 में लिखी है। इसमें अस्थिर मानवी जीवन की ओर संकेत किया है। आज लोगों की शहरों की ओर बाढ़-सी आने लगी है। नौकरी के कारण से अपना गाँव छूटता जा रहा है। शहर में भी नौकरी एक जगह स्थिर नहीं है। तबादला होने पर एक शहर छोड़कर दूसरे शहर जाना पड़ता है। मिश्र जी को भी नौकरी के कारण कभी अहमदाबाद, नवसारी, बड़ोदा, बनारस, दिल्ली आदि शहरों में भटकना पड़ा है। इस अलग-अलग शहरों में अच्छे बुरे अनुभव आते रहे हैं। वे अस्थिर जीवन की ओर संकेत करते हुए कहते हैं -

"रहा गाँव तुझको पुकारता, रहे हाथ जंगल थामते
तेरा अपना शहर भी छूट गया, किसी के शहर की तलाश में"[102]

(38) मिश्र जी की अड़तीसवीं गज़ल सन् 1955 में लिखी है। यह प्रेम संबंधी गज़ल है। इस प्रेमसंबंधी गज़ल के बारे में राधेश्याम तिवारी लिखते हैं - "प्यार सृष्टि का

अनमोल निधि है। प्यार ही है जो एक-दूसरे को जोड़ने का कार्य करता है और सभी रिश्तों की बुनियाद भी तो प्यार ही है जिसके चलते जीवन में रागात्मक भाव संचारित होते हैं। दूर रहकर भी किसी की याद आना पूर्वराग की ही स्थिति है। हर मनुष्य और प्राणीमात्र किसी न किसी के प्यार में बँधा है। ये बात अलग है कि प्यार की ताकत को सभी महसूसते हैं पर उसका उद्‌गम स्थल कहाँ है, इसका ज्ञान किसी को नहीं है।''[103] प्यार में आरंभिक स्थिति ऐसी होती है कि प्रेमी एक-दूसरे के साथ आमने-सामने नहीं बोलते। वे अक्सर अपने प्रेमी के संबंध में दूसरों के सामने बातें करते रहते हैं। उन बातों को व्यक्त करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

''बात करता किसी से छिप मेरी
ज्यों पहुँचता हूँ चुप लगता है

× × ×

उसके होठों से छूट कर जैसे
नाम मेरा ही थरथराता है''[104]

(39) यह उनचालीसवीं गज़ल 1955 में लिखी है। बिछड़े हुए प्रेमियों के दिल का दर्द यहाँ चित्रित हुआ है। प्रेयसी प्रेमी को छोड़कर चली जाती है। वह उसके प्यार को तोड़ देती है। इससे प्रेमी के मन को गहरी चोट पहुँचती है। प्यार में भी व्यावहारिकता आने के कारण प्यार के लिए जीना-मरना आज इतिहास हो गया है। इसकी ओर संकेत करते हुए मिश्र जी कहते हैं-

''तेरी नजर में तू नहीं, छाया है गर्म रेत की
तुझको किसी की फिक्र क्या, इसमें करे जला कोई।''[105]

(40) चालीसवीं गज़ल 12 सितंबर, 1984 में लिखी है। यह गज़ल वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालती है। आज का युग विज्ञापन का युग है। हर क्षेत्र को विज्ञापन ने जकड़ लिया है। आज जो लोग मेहनत कम और विज्ञापन ज्यादा करते हैं। ऐसे ही लोग मालामाल हो जाते हैं। मेहनत करनेवाले लोग चुपचाप अपना काम करते रहते हैं। इसका भी लाभ ये लोग उठाते हैं। इसकी ओर संकेत करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

''कोई आँसू, हँसी कोई, कुछ तो अपने नाम हो
जी लिये अब तक बहुत गुमनाम, आओ घर चलें

दूसरों के ख्वाब को अपना समझ सोते रहे
पड़ा होगा ढेर सारा काम, आओ घर चलें।''[106]

(41) प्रस्तुत गज़ल 25 सितंबर, 1984 में लिखी है। यह सवालात्मक गज़ल है। लेकिन इस सवाल का जबाब दूसरे ही पंक्ति में मिलता है। मिश्र जी समाज के प्रति सतर्क व्यक्ति है। इसीलिए उन्होंने भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठायी है। भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ सच्चाई की आग जगाने की गज़लकार की सजगता निम्न पंक्तियों में स्पष्ट होती है -

"पूछिए मत कि क्या हुआ यारो
आप लोगों की है दुआ यारो

जल गया घर ये किसका जादू है
कोई शोला न है धुआँ यारो।"[107]

आदमी का जीवन सड़क पर पड़े कुत्ते जैसा हो गया है। जिसकी दखल कोई नहीं लेता। आम आदमी की जिंदगी ऐसी ही गुजर जाती है। उनको ऊपर उठने का मौका ही नहीं मिलता। इस बात पर संवेदना व्यक्त करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"फूल मुरझा गया बिना मौसम
आपने तो नहीं छुआ यारो?"[108]

(42) यह बयालीसवीं गज़ल 10 नवंबर, 1984 में लिखी है। इस गज़ल के माध्यम से महानगरीय बोध परिलक्षित होता है। गज़लकार वर्तमान स्थिति को देखकर चिंतित है। इस स्थिति को देख उन्हें आदिम युग की याद आती है। इस गज़ल के बारे में सुभाष भदौरिया लिखते हैं - "आज चारों तरफ हिंसा, अतिशजनी, फसाद जैसी घटनाएँ प्रतिदिन हो रही हैं, मनुष्य मनुष्य के रक्त का प्यासा बना हुआ है, ये कहीं आदिम युग की अविकसित स्थितियों का पुनरावर्तन तो नहीं, वे इसी ओर संकेत करते हैं।"[109] मिश्र जी अपनी इस गज़ल के प्रथम शेर में इस बात का संकेत देते हुए कहते हैं -

"हम जहाँ थे चले क्या फिर वहीं आना हुआ
यह अजनबी दृश्य कुछ लगता है पहचाना हुआ"[110]

(43) मिश्र जी की यह 1977 में लिखी प्रेम-संबंधी गज़ल है। जब कोई किसी की ओर आकर्षित होता है तो उसके मन में मिलने की इच्छा स्वाभाविक ही होती है। इसी कारण वह सदैव बेचैन रहते हैं। इस गज़ल में बहुत दिनों से मिले प्रेमियों का चित्रण है। प्यार में समर्पण भाव महत्त्वपूर्ण है। प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए संपूर्ण जीवन समर्पित करने के लिए तैयार होता है। इसमें उन्हें सुख मिलता है। बहुत दु:ख सहकर भी वे एक-

दूसरे को मिलते रहते हैं। इससे बड़ा सुख क्या है? वे अपने मिलन का आनंद व्यक्त करते हुए कहते हैं -

> ''देर से ही सही तुम आए, बहुत अच्छा किया
> बाद लंबे वक्त के भाए, बहुत अच्छा किया
> × × ×
> नदी नाले पर्वतों ने रास्ते रोके बहुत
> भूल तुम हमको नहीं पाये, बहुत अच्छा किया।''[111]

(44) प्रस्तुत ग़ज़ल 3 अप्रैल, 1985 में लिखी है। इसमें स्वातंत्र्योत्तर भारत की स्थिति को चित्रित किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर काल में राजकाज में गुंडों की घुसखोरी हुई। ऐसे गुंडे जबरदस्ती से लोगों के वोट हासिल कर चुनाव जीत जाते हैं। वे पहले से ही आतंकवादी संघटनाओं से जुड़े होने के कारण इस देश को अंदर से कमजोर बनाने की कोशिश में लगे रहते हैं। ऐसे लोग जनता से मनमानी कर उनका जीना हराम कर देते हैं। इसी कारण जहाँ भी देखो उदासी छायी हुई दिखती है। इसकी ओर संकेत करते हुए कवि मिश्र जी कहते हैं -

> ''उदास धूप है, बस्ती मरी-मरी सी है
> सुबह-सुबह सी नहीं, मौन थरथरी-सी है।''[112]

(45) यह ग़ज़ल 5 अप्रैल, 1985 में लिखी है। इस ग़ज़ल में ग़ज़लकार ने मनुष्य की संकुचित मानसिकता तोड़ने का संदेश दिया है। आज संकुचित मानसिकता ने आदमी के मन में घर कर लिया है। यह स्थिति राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक सभी क्षेत्रों में फैली हुई है। इसी कारण आदमी की विचार करने की शक्ति घटने लगी है। इस पर राधेश्याम तिवारी अपना मत प्रकट करते हुए कहते हैं कि ''हर व्यक्ति की अपनी नीजि समझ होती है और कोई जरूरी नहीं कि बहुमतों की समझ सही ही है। इतिहास ने ऐसे ऐसे मोड़ देखे हैं जहाँ अंतत: बहुमत ही गलत सिद्‌ध हुआ। बहुत ने सुकरात को विष का प्याला पीने को विवश किया और इसा को सूली मिली। अंतत: बहुमत को महसूसना पड़ा कि वही गलत है। किसी की बातों को पूर्वग्रह मुक्त होकर ही कहना और सुनना चाहिए। इसके लिए जरूरी है विचारों की सारी खिड़कियाँ खुली हों।''[113] यही स्थिति सभी महात्माओं की है। समय ने उनके साथ न्याय नहीं किया। ग़ज़लकार को भी इस संकुचित मानसिकता का शिकार होना पड़ा है। मगर ये महात्मा

किसी का बुरा नहीं चाहते। वे सभी का कल्याण चाहते हैं। वे इस संकुचित मानसिकतावाले लोगों का अज्ञान मानते हैं। इसी ओर संकेत करते हुए ग़ज़लकार कहते हैं -

"तोड़ दो शीशा कहीं, आयें हवाएँ
बंद कमरे में घुटन छाने लगी है
याद भर रह जायेगी, जी लो घडी भर
देख लो ऋतु बाग से जाने लगी है।"[114]

(46) प्रस्तुत गज़ल 12 अप्रैल, 1985 में लिखी है। मानव जीवन में घर का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल से आज तक के इतिहास को देखें तो मानव जीवन में बहुत बदलाव आया है। आज वह पक्के मकान में तो कहीं फ्लैटस् में रहने लगा है। मगर जैसे-जैसे मनुष्य का देश-विदेश से संपर्क आया वैसे-वैसे औद्योगिकीकरण बढ़ता गया। अपने व्यवसाय, अपने रिश्ते बदले गए। फ्लैटस् संस्कृति के कारण तो घर लुप्त होते जा रहे हैं। घर में जो लगाव था वह खत्म होता जा रहा है। मिश्र जी जैसे देहात से महानगर में बसे व्यक्ति को यह बात बेचैन करती है। उनके मन के भाव उभरकर आते हैं और वे कहते हैं -

"बस गया हूँ दोस्तों, दिल्ली शहर के बीच यों तो
घर मेरा अब भी हाँ वही, गोरखपुर जिला है।"[115]

(47) प्रस्तुत सैंतालिसवीं गज़ल सन् 1954 में लिखी है। इस गज़ल के माध्यम से आम आदमी की मोहभंग की स्थिति को चित्रित किया है। हम स्वातंत्र्योत्तर इतिहास देखकर कह सकते हैं कि कोई भी सरकार आम आदमी की समस्याओं का हल करने में सफल नहीं हुई है। चाहे स्वतंत्रता के पश्चात् औद्योगिक विकास हुआ हो, मगर वर्ग-वैषम्य तो बढ़ता ही गया। औद्योगिकीकरण के कारण शीघ्र ही समाज में वर्ग-वैषम्य गहरा होता गया। चाहे अंग्रेज हो या अपने भारतीय जनता के साथ कूटनीति चलती ही रही, सामान्य जनता अँधेरे में भटकती ही रही। इसी ओर संकेत करते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"इसी तरह जो ख्वाब-ख्वाब बेजुबाँ होगा
कोई बताये हमें इस सफर का क्या होगा?
कभी से चल रहे हैं सोचते अँधेरे में
यहाँ नहीं तो, कोई रास्ता वहाँ होगा।"[116]

(48) प्रस्तुत गज़ल 1954 में लिखी है। इस गज़ल में वेदना और आस्था के स्वर नजर आते हैं। मानव सदैव वेदना से ग्रस्त होता है फिर भी उसके मन में जीवन जीने

की आस्था होती है। इसलिए वह सदैव संघर्षरत रहता है। भारत देश 'सुजलाम् सुफलाम्' माना जाता है। यह सुजलाम् सुफलाम्ता सिर्फ बड़े लोगों के लिए है। सामान्य जनता के लिए यह देश वीराना है। ये लोग दर्दे दिल को लेकर जीते हैं। दुखी लोगों का दुख देखकर किसी का भी मन द्रवित होता है। यह पीड़ा किसी अकेले व्यक्ति की पीड़ा न होकर समष्टि की पीड़ा है। मिश्र जी कहते हैं -

"दर्द दुनिया भर का सीने में लिये जाते हैं हम
जिंदगी जीने की मजबूरी जिये जाते हैं हम

× × ×

यों तो ये बाजार, महफिल, पर सभी वीरान हैं
फिर भी वीराने में आवाजें दिये जाते हैं हम।"[117]

(49) इस संग्रह की उनचासवीं गज़ल 22 मई, 1985 में लिखी है। मिश्र जी ने इस गज़ल के माध्यम से दुनिया की नियति पर प्रकाश डाला है। यह दुनिया ऐसी है जो जीनेवालों को जीने नहीं देती और मरनेवालों को मरना नहीं देती। जो ऊपर उठता है उसे नीचे दबाने का प्रयास करती है। लेकिन आज शिक्षा के कारण गुलामी कम होती जा रही है। दुनिया में कुछ ऐसे भी लोग हैं जिन्हें जितना भी दबाया जाता है वे उतना ही ऊपर उठने की कोशिश करते हैं। शोषकों को सावधानता का इशारा देते हुए मिश्र जी कहते हैं -

"सुनिये, वे दिन गये कि जब थे हम गुबारे आपके
चाहा कि जब मसल दिया, चाहा की जब फुला दिया।"[118]

(50) पचासवीं गज़ल 20 अप्रैल, 1985 में लिखी है। इसमें गज़लकार के मन का दुख प्रकट होता है। कुछ लोग इतने स्वाभिमानी होते हैं कि वे अपनी जबान से हटते नहीं है। आज हम जनतंत्र में जी रहे हैं। कहा जाता है कि कुछ स्थितियाँ ऐसी होती है जो पुरानी स्थितियाँ नया रूप लेकर सामने आती है। पहले युद्ध मैदान में आमने-सामने होते थे। आज दिमाग से आंतरिक दाँवपेच से सामनेवालों को हटा दिया जाता है। मिश्र जी मानव-मूल्य के पुजारी हैं। उनके साथ साहित्यिक राजनीति ने बड़ा अन्याय किया है। फिर भी उन्होंने अपना रास्ता कभी नहीं छोडा। यह सब देख उनका मन दुःखी होने लगता है। वे कहते हैं -

"अपनी तनहाई में मैं गाने लगा हूँ
आज कुछ अपना पता पाने लगा हूँ

कैद रखिए आप सारे रास्तों को

पत्थरों से चलके मैं जाने लगा हूँ।''[119]

(51) एक्क्यावनवीं गज़ल 24 अप्रैल, 1985 में लिखी है। इस गज़ल में बढ़ती हृदयहीनता को चित्रित किया है। स्वतंत्रता के बाद भी भारत में सामाजिक विषमता खत्म नहीं हुई। आज शहरों में लोगों की बाढ़-सी आयी है। इस बाढ़ को रोकने में हर सरकार असफल हुई है। आज भी इस देश में गरीबी, बेकारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी, बेईमानी, धर्म के नाम पर दंगे-फसाद आदि समस्याओं के कारण लोगों में हृदयहीनता बढ़ने लगी है। आज आदमी न खुलकर हँस सकता है न रो सकता है। इसलिए मिश्र जी कहते हैं -

''हँस रहे हैं कि रो रहे हैं हम

पा रहे हैं कि खो रहे हैं हम।''[120]

क्या हमने यही पाया है? खून, खराबा, धोखाधड़ी। आज अच्छाई में भी बुराई पनपने लगी है। अगले शेर में मिश्र जी कहते हैं -

''दूसरों के लहू बहा, अपने

दाग़ अश्कों के धो रहे हैं हम।''[121]

(52) प्रस्तुत गज़ल 17 मई, 1985 में लिखी है। प्रकृति के माध्यम से मिश्र जी ने वर्तमान स्थिति की ओर संकेत किया है। जहाँ भी देखो उदासी छायी हुई है। कौन किसकी हालत किसे बतायें सबका दुख एक ही है। इस स्थिति को उद्धृत करते हुए कवि कहते हैं -

''पूछते हैं पेड़ पेड़ों से सहम कर

क्यों हवा में आज फैली सनसनी है।''[122]

यदि इस स्थिति को बदलना है तो आपसी प्यार, भाईचारा निर्माण करना चाहिए। हरेक धर्म प्यार की भाषा सिखाता है। धर्म-धर्म से तोड़ता नहीं तो जोड़ता है। हिंदू हो या मुस्लिम सबका खून एक जैसा है। एक-दूसरे का द्वेष करना गलत है। गज़लकार भी इस स्थिति को सुधारना चाहते हैं। वे संतनुमा अंदाज में कहते हैं -

''रंग सबके प्यार का तो एक ही है

क्या हुआ मैं राम, तू अब्दुलगनी है।''[123]

(53) मिश्र जी की यह त्रेपन्नवीं गज़ल 1 जून, 1985 में लिखी है। इसमें जीवन-संबंधी कुछ बातों का जिक्र किया है। जीवन में कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है। मिश्र जी अपनी गज़ल में कहते हैं -

''तेरी महफिलों में हँसा किया, समझे थे लोग कि खुश हूँ मैं
यों ही चलती रहती खुशी मेरी, मेरे आँसुओं ने दगा दिया
तेरी रात में था मिला कि जो वह नूर तेरे ही दिल का था
तूने क्या किया कि वसंत को अपने ही दर से भगा दिया
तू कहाँ गया, वे कहाँ गये, मेरे साथ बस मेरी आग है
चलो इस सफर ने भला किया, मुझे अपना कोई सगा दिया।''[124]

(54) चौपन्नवीं गज़ल इस संग्रह की अंतिम गज़ल है। इसे मिश्र जी ने 1 सितंबर, 1985 में लिखा है। यह गज़ल स्वयं मिश्र जी के जीवन के बारे में ही है। इसका जिक्र इसी अध्याय के कविता-संग्रह में किया है।

निष्कर्ष :

'रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ' तथा 'बाजार को निकले हैं लोग' इन दो काव्य-संग्रहों के संक्षिप्त विवेचन के बाद निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि दोनों रचनाओं में से प्रथम रचना चुनिंदा कविताओं का संकलन है। ये कविताएँ एक अलग दस्तावेजी महत्त्व रखती है। इनमें से कई गीत, गज़ल है तो बाकी कविताएँ हैं। इनमें से कई कविताएँ बहुत छोटी तो कई 'लम्बी कविताएँ' हैं। यह कविताएँ युगीन जीवन का यथार्थ चित्रित करने में सफल हुई है। मिश्र जी का प्रथम काव्य-संग्रह 'पथ के गीत' से लेकर बारहवाँ काव्य-संग्रह 'ऐसे में जब कभी' (1999) तक काव्य-संग्रहों की कविताएँ इस काव्य-संकलन में संकलित है। इससे मिश्र जी की काव्य-प्रतिभा का विकास दिखाई देता है। मिश्र जी ने हिंदी साहित्य क्षेत्र में काव्य-विधा के रूप में कदम रखा। वे पहले गीत लिखते थें। उनके ज्यादातर गीत प्रकृति तथा प्रेम संबंधी मिलते हैं। गीतों में समय का यथार्थ समाहित न होने के कारण वे कविता की ओर मुड़े। उन्होंने अनेक छोटी तथा लंबी कविताएँ लिखीं है। उनकी लंबी कविताओं में राजनीतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक खोखलेपन तथा व्यवस्था दोषों का चित्रण मिलता है। लंबी कविताओं में 'लौट आया हूँ मेरे देश', 'साक्षात्कार', 'फिर वही लोग' आदि महत्त्वपूर्ण कविताएँ हैं। उनकी छोटी-छोटी कविताएँ अनेक युगीन समस्याओं को चित्रित करती हैं।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

रामदरश मिश्र जी के प्रतिनिधि काव्य-संकलन में ऐसी कविताओं का संकलन हैं जिनमें विविधांगी कविताओं का तथा समाज-जीवन के विविध पार्श्व का चित्रण हुआ है। उन्होंने सिर्फ विविध सामाजिक समस्याओं का ही चित्रण नहीं किया तो प्रकृति के विविध रूप तथा प्रेम की विविध दशाओं का भी चित्रण किया है। विभिन्न प्रतिकों के माध्यम से वर्तमान समस्याओं को समझाने में उन्हें सफलता मिली है। डॉ. रघुवीर चौधरी जी ने चुनिंदा कविताओं के इस संकलन में अनेकविध विषयों की कविताओं का संकलन करने का प्रयास श्रेष्ठ साबित हुआ है। अत: उनका प्रयास सराहनीय रहा है।

'बाजार को निकले हैं लोग' इस गज़ल-संग्रह के रूप में मिश्र जी का गज़ल क्षेत्र में प्रथम प्रयास रहा है। इस संग्रह में बहुत महत्त्वपूर्ण गज़लें संग्रहित हैं। यह गज़लें इतनी रसपूर्ण हैं कि बार-बार पढ़ने को वह बाध्य करती हैं। दुष्यंतकुमार, कुँअर बेचैन जैसे महत्त्वपूर्ण गज़लकारों की तरह मिश्र जी भी सफल गज़लकार रहे हैं। उनकी छोटी-छोटी गज़लें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें से कई गज़लें प्रकृति संबंधी, कई प्रेम संबंधी, कई उनके जीवनसंबंधी तो कई महत्त्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं संबंधी हैं। उनके प्रकृति संबंधी गज़लों में प्रकृति के कई रूप दिखाई देते हैं तथा प्रेमसंबंधी गज़लों में विविध अवस्थाओं का चित्रण परिलक्षित होता है। उनके जीवन-संबंधी गज़लों में उनके जीवन में आये उतार-चढ़ाव, सुख-दुख तथा साहित्यिक जीवन-यात्रा के दरमियाँन साहित्यकारों द्वारा हुए अन्याय का चित्रण भी दृष्टिगोचर होता है। सामाजिक समस्याओं में अकेलापन, भ्रष्टाचार, गरीबी, जातियता, न्याय-व्यवस्था, शोषण, अफसरशाही आदि समस्याओं का चित्रण प्राप्त होता है। इसके साथ ही इनमें कई संदेशात्मक गज़लें भी हैं।

मिश्र जी की गज़लों में प्रचलित अरबी, फारसी तथा उर्दू शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। गज़लसंबंधी प्रचलित नियमों का पालन करने का प्रयास मिश्र जी ने किया है। वे अपने विषय से भटकते नहीं हैं। इस प्रकार मिश्र जी की दोनों रचनाओं में समकालीन युगीन जीवन-यथार्थ का चित्रण परिलक्षित होता है। मिश्र जी की समग्र कविताएँ युगजीवन की दृष्टि से देखा जाए तो उनमें प्रातिनिधिक रूप में युग जीवन उभरकर सामने आया है।

संदर्भ :

1. सं.रघुवीर चौधरी, रामदरश मिश्र जी प्रतिनिधि कविताएँ, बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ पृष्ठ-29
2. वही, रात और सुबह, पृष्ठ - 30
3. वही, सहयात्री, पृष्ठ - 30
4. वही, निशान, पृष्ठ - 31
5. वही, बन्द कर लो द्वार, पृष्ठ - 33
6. वही, सागर और मैं, पृष्ठ - 34
7. वही, होने, न होने के बीच, पृष्ठ - 35
8. वही, केन्द्र और परिधि, पृष्ठ - 37
9. वही, लाशों के बीच : जीवित होने की पीड़ा, पृष्ठ - 39
10. वही, आमने सामने मकान, पृष्ठ - 40
11. वही, गलियाँ और सड़कें, पृष्ठ - 42
12. वही, अजनबी ठण्डी हवाएँ, पृष्ठ - 42
13. वही, दिशाएँ बन्द हैं, पृष्ठ - 45
14. वही, ग्रीष्म दोपहरी : छह कविताएँ, पृष्ठ - 46-47
15. वही, कन्धे पर सूरज, पृष्ठ - 49
16. डॉ.नित्यानंद तिवारी/डॉ. ज्ञान चन्द गुप्त,रचनाकार रामदरश मिश्र, पृष्ठ-168-169
17. सं. रघुवीर चौधरी, रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ, गठरी, पृष्ठ - 55
18. वही, लौट आया हूँ मेरे देश, पृष्ठ - 60
19. वही, वापसी, पृष्ठ - 64
20. वही, बाहर तो वसंत आ गया है, पृष्ठ - 66
21. वही, नदी बहती है, पृष्ठ - 66
22. वही, पता, पृष्ठ - 67
23. वही, वह, पृष्ठ - 67-68
24. वही, माँ, पृष्ठ - 68
25. डॉ. फूलबदन यादव, रामदरश मिश्र : व्यक्तित्व कृतित्व, पृष्ठ - 73
26. सं. रघुवीर चौधरी, रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ, चूहे, पृष्ठ - 73-74
27. सं. जगन सिंह/स्मिता मिश्र, रामदरश मिश्र व्यक्ति और अभिव्यक्ति, पृष्ठ - 260

28. सं. रघुवीर चौधरी, रामदरश मिश्र की प्रतिनिधि कविताएँ, दिन, पृष्ठ - 74
29. वही, धूप, पृष्ठ - 75
30. वही, राजधानी एक्सप्रेस, पृष्ठ - 76
31. वही, चिड़िया, पृष्ठ - 78
32. वही, औरत, पृष्ठ - 83
33. वही, चिट्ठियाँ, पृष्ठ - 86
34. वही, धर्म, पृष्ठ - 90
35. वही, फिर वही लोग, पृष्ठ - 101
36. वही, एक नीम मंजरी, पृष्ठ - 106
37. वही, रात रात भर मोरा पिहँके, पृष्ठ - 106
38. वही, फागुनी शाम : एक नीली झील, पृष्ठ - 109
39. वही, विदाभास, पृष्ठ - 110
40. वही, खो गयी सब यात्राएँ साथ की, पृष्ठ - 111
41. वही, गज़ल, पृष्ठ - 111
42. वही, दूर ही दूर से बुलाता है, पृष्ठ - 112
43. वही, गज़ल, पृष्ठ - 113
44. वही, पके धान की धूप, पृष्ठ - 114
45. वही, बादल चले जा रहे, पृष्ठ - 115
46. वही, बादल घेर घेर मत बरस, पृष्ठ - 115
47. वही, खाली हूँ मन भरा-भरा-सा, पृष्ठ - 116
48. वही, गाढ़े गये दिन बीत, पृष्ठ - 117
49. वही, पता नहीं, पृष्ठ - 117
50. वही, बरसात गयी, पृष्ठ - 118, 119
51. वही, कोई दर्पण टूटा होगा, पृष्ठ - 119
52. वही, जलते हैं फूल, पृष्ठ - 120
53. रामदरश मिश्र, बाजार को निकले हैं लोग, गज़ल क्र.1, पृष्ठ - 7
54. वही, गज़ल क्र.2, पृष्ठ - 8
55. वही, गज़ल क्र.3, पृष्ठ - 9

56. वही, ग़ज़ल क्र.4, पृष्ठ - 10
57. वही, पृष्ठ - 10
58. वही, ग़ज़ल क्र.5, पृष्ठ - 11
59. वही, ग़ज़ल क्र.6, पृष्ठ - 12
60. वही, पृष्ठ - 12
61. वही, ग़ज़ल क्र.7, पृष्ठ - 13
62. वही, ग़ज़ल क्र.8, पृष्ठ - 14
63. वही, ग़ज़ल क्र.9, पृष्ठ - 15
64. वही, ग़ज़ल क्र.10, पृष्ठ - 16
65. वही, ग़ज़ल क्र.11, पृष्ठ - 17
66. वही, ग़ज़ल क्र.12, पृष्ठ - 18
67. देवराज, नयी कविता, पृष्ठ - 23
68. रामदरश मिश्र, बाजार को निकले हैं लोग, ग़ज़ल क्र.13, पृष्ठ - 19
69. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ, अभिनव प्रसंगवश, जून-जनवरी-2002, पृष्ठ- 67
70. रामदरश मिश्र, बाजार को निकले हैं लोग, ग़ज़ल क्र.14, पृष्ठ - 20
71. वही, ग़ज़ल क्र.15, पृष्ठ - 21
72. वही, ग़ज़ल क्र.16, पृष्ठ - 22
73. वही, ग़ज़ल क्र.17, पृष्ठ - 23
74. सं. स्मिता मिश्र, अंतरंग, पृष्ठ - 54
75. रामदरश मिश्र, बाजार को निकले हैं लोग, ग़ज़ल क्र.18, पृष्ठ - 24
76. वही, ग़ज़ल क्र.19, पृष्ठ - 25
77. वही, ग़ज़ल क्र.20, पृष्ठ - 26
78. वही, ग़ज़ल क्र.21, पृष्ठ - 27
79. देवराज, नयी कविता, पृष्ठ - 22
80. रामदरश मिश्र, बाजार को निकले हैं लोग, ग़ज़ल क्र.22, पृष्ठ - 28
81. वही, ग़ज़ल क्र.23, पृष्ठ - 29
82. वही, ग़ज़ल क्र.24, पृष्ठ - 30
83. सं. स्मिता मिश्र, अंतरंग, पृष्ठ - 159

84. रामदरश मिश्र, बाजार को निकले हैं लोग, गज़ल क्र.25, पृष्ठ - 31

85. सं.वेदप्रकाश अमिताभ, अभिनव प्रसंगवश, जनवरी-जून-2002, पृष्ठ - 72

86. रामदरश मिश्र, बाजार को निकले हैं लोग, गज़ल क्र.26, पृष्ठ - 32

87. वही, गज़ल क्र.27, पृष्ठ - 33

88. वही, गज़ल क्र.28, पृष्ठ - 34

89. वही, गज़ल क्र.29, पृष्ठ - 35

90. वही, गज़ल क्र.30, पृष्ठ - 36

91. वही, गज़ल क्र.31, पृष्ठ - 37

92. वही, पृष्ठ - 37

93. वही, गज़ल क्र.32, पृष्ठ - 38

94. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ/डॉ. बादाम सिंह रावत, हिंदी गजल संदर्भ और सार्थकता, पृष्ठ - 147

95. रामदरश मिश्र, बाजार को निकले हैं लोग, गज़ल क्र.33, पृष्ठ - 39

96. वही, पृष्ठ - 39

97. वही, गज़ल क्र.34, पृष्ठ - 40

98. वही, पृष्ठ - 40

99. वही, गज़ल क्र.35, पृष्ठ - 41

100. सं.जगन सिंह/स्मिता मिश्र, रामदरश मिश्र व्यक्ति और अभिव्यक्ति, पृष्ठ-144

101. रामदरश मिश्र, बाजार को निकले हैं लोग, गज़ल क्र.36, पृष्ठ - 42

102. वही, गज़ल क्र.37, पृष्ठ - 43

103. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ/डॉ. बादाम सिंह रावत, हिंदी गजल संदर्भ और सार्थकता, पृष्ठ - 148

104. रामदरश मिश्र, बाजार को निकले हैं लोग, गज़ल क्र.38, पृष्ठ - 44

105. वही, गज़ल क्र.39, पृष्ठ - 45

106. वही, गज़ल क्र.40, पृष्ठ - 46

107. वही, गज़ल क्र.41, पृष्ठ - 47

108. वही, गज़ल क्र.41, पृष्ठ - 47

109. सं. जगन सिंह/स्मिता मिश्र, रामदरश मिश्र व्यक्ति और अभिव्यक्ति,पृष्ठ-145

110. रामदरश मिश्र, बाजार को निकले हैं लोग, गज़ल क्र.42, पृष्ठ - 48

111. वही, गज़ल क्र.43, पृष्ठ - 49

112. वही, गज़ल क्र.44, पृष्ठ - 50

113. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ/बादाम सिंह रावत, हिंदी गजल संदर्भ और सार्थकता, पृष्ठ - 146

114. रामदरश मिश्र, बाजार को निकले हैं लोग, गज़ल क्र.45, पृष्ठ - 51

115. वही, गज़ल क्र.46, पृष्ठ - 52

116. वही, गज़ल क्र.47, पृष्ठ - 53

117. वही, गज़ल क्र.48, पृष्ठ - 54

118. वही, गज़ल क्र.49, पृष्ठ - 55

119. वही, गज़ल क्र.50, पृष्ठ - 56

120. वही, गज़ल क्र.51, पृष्ठ - 57

121. वही, पृष्ठ - 57

122. वही, गज़ल क्र.52, पृष्ठ - 58

123. वही, पृष्ठ - 58

124. वही, गज़ल क्र.53, पृष्ठ - 59

❑❑❑❑